मानवतरंगिणी

तरंग २

संघर्ष

लेखक—

भगवत शरण उपाध्याय, एम्० ए०

(काशी विश्वविद्यालय)

रचयिता

सबेरा, नूरजहाँ आदि ।

प्रकाशक—

सरस्वती-मंदिर

जतनबर, बनारस ।

प्रथम बार १०००] १९४१ [मूल्य १

पुस्तक-विक्रेता—

नन्दकिशोर ऐंड ब्रदर्स,

चौक, बनारस सिटी।

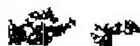


३३०७

मुद्रक—

बी० के० शास्त्री,

ज्योतिष प्रकाश प्रेस, बनारस।



वक्तव्य

प्रस्तुत संग्रह मानवतरंगिणी की द्वितीय तरंग है। धारावाहिक रूप से ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विकास का ही इसमें भी ध्यान रखा गया है। महाभारत आदि ग्रंथों के आधार की कहानियों के संग्रह अलग प्रस्तुत किए जाएँगे। उनके बीच में आ जाने से ऐतिहासिक शृंखला टूट जाएगी। प्रस्तुत संग्रह का समय-प्रसार सातवीं शती ई० पू० से तीसरी शती ई० पू० तक है।

प्रोफेसर पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, एम० ए०, साहित्यरत्न ने इसके प्रूफ आदि देखे हैं। मैं उनका ऋणी हूँ। प्रकाशकों ने जो तत्परता दिखा कर मेरा उत्साह-वर्धन किया है उसके लिए मैं उनका भी ऋणी हूँ। रैपर के ऊपर का चित्र (विलासी) नामक कहानी से संबंध रखता है। यह दूसरी शती ई० पू० में मिट्टी के ठीकरे पर उत्कीर्ण उदयन द्वारा वासवदत्ताहरण कथा का फोटो प्रिंट है। फोटो भारत-कला-भवन के अध्यक्ष श्री राय कृष्णदास जी के सौजन्य से प्राप्त हुआ। मैं उनका आभारी हूँ।

काशी विश्वविद्यालय,
८—५—४१

भगवत शरण उपाध्याय

गतिमती मानवता का इतिहास
उद्भ्रान्त विकल मानव को—

सूची

संघर्ष

[विचारों का संघर्ष सनातन, सार्वदेशिक है। भारतीय संस्कृति की यह शिलाभित्ति है। सत्य की खोज में संघर्ष हुए हैं—कुछ ने विरोध खोजा, कुछ ने सामंजस्य। सत्य की सारता और असारता किसकी जानी है? पर प्रयास-प्रयत्न सबने किए है—ईश्वरवादी ऋषि ने भी, प्रकृतिवादी लोकायत ने भी। यह विचारों का द्वन्द्व, संघर्ष, अतीत में चला है, वर्तमान में चल रहा है, और भविष्य में चलेगा। वाम-मार्ग का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना दक्षिण अथवा श्रुति-मार्ग का। दक्षिण अथवा श्रुति-मार्ग ने अपनी संज्ञा वाम-मार्ग की अनबन से प्राप्त की। इस कहानी में इसी विचार-संघर्ष की कथा है। इसका समय उपनिषत्-काल के अन्त और प्राग्बौद्ध-काल के प्रारम्भ का सन्धि-काल है।]

२९—८—१९४० } { प्रातः ४—१०

१

याग-होम के उपरान्त ऋषि ने वेद-पाठन किया। कुलपति के समक्ष कितने ही ब्रह्मचारी ब्रह्माचरण के निमित्त समित्पाणि होकर आए और विदग्ध हुए, कितने ही उपनीत शिष्यों ने विद्यावधि के पश्चात् आज समावर्तन प्राप्त किया—संसार में लौटे। कुछ को जगत् के कल्याणार्थ ऋषि ने पर्यटन और उपदेश के निमित्त दीक्षित कर भेजा, कुछ को तीनों आश्रमों के हित-साधक गार्हस्थ्य का उपदेश किया। ब्रह्मचारी 'सत्यं वद, धर्मं चर' की दीक्षा ले संसार-क्षेत्र में उतरे। नए आए, पुराने गए। गुरुकुल की परंपरा में भेद न पड़ा।

× × × ×

अपराह्ण में गुरुकुल का उपाध्याय लौटा—उद्भ्रान्त, उद्विग्न।

ऋषि ने पूछा—उद्वेग कैसा, उपाध्याय ?

उपाध्याय कान्तिहीन हो गया था, उसकी मुखश्री अप्रतिभ हो गई थी।

बोला—उद्वेग कैसा? मार्तंड चमका, उसने मुझे झुलस दिया।

"मार्तंड-लोकायत?" ऋषि ने पूछा। उसकी भौंहों में बल पड़ गए।

"हाँ, मार्तंड-लोकायत, जिसकी शब्द-शक्ति जागर्ति में अन्तर को आन्दोलित करती है, श्रद्धा-विश्वास के आधार को हिला देती है और सुषुप्ति में प्रेत की छाया की भाँति अनुसरण करती है।" उपाध्याय ने उत्तर दिया।

उसका मस्तक अब भी झुका था। लोकायत ने नगर के प्रांगण में जनसमूह के समक्ष उपाध्याय के तर्क और ज्ञान को झकझोर दिया था। देवता की कितनी ही मनौतियाँ भी उसकी रक्षा न कर सकी थीं। और वह लौटा था ऋषि के समीप—कातर, क्रुद्ध, संतप्त।

"भ्रान्ति निर्मूलक है, उपाध्याय, चित्त स्थिर करो।" ऋषि बोला—संयत ऋषि, उठती शंकाओं का सबल निरोध करता।

"भ्रान्ति निर्मूलक नहीं है, महर्षि। आप द्रष्टा हैं—'साक्षात्कृतधर्माणः' ऋषियों में आपकी गणना है। ब्रह्म और सत्य आपको स्पष्ट उपलब्ध हैं, परन्तु मैं हूँ मानव, उपाध्याय—पार्थिव पितृ-कामना से समुद्भूत शंकाजर्जर क्षुद्र प्राणी। शंकाएँ ब्रह्मचारियों के निश्छल प्रश्नों से प्रादुर्भूत होती हैं और मार्तंड-लोकायत की प्रखर प्रमाण-किरणों से उद्भासित हो मूर्तिमती हो उठती हैं। भला चित्त स्थिर कैसे करूँ?"

"बस वही, वही—ब्रह्मचारियों के प्रश्नों से प्रसूत शंकाएँ दुर्बल हृदय की उर्वरा भूमि में पनपती हैं। हृदय में शक्ति लाओ।" ऋषि ने जैसे उसे पकड़ा।

"और जब शंकाएँ ब्रह्मचारियों की अनुपस्थिति में अकारण उमड़-घुमड़ उठती हैं—तब ?" सत्यार्थी उपाध्याय गहरे जल में स्थल को छूता हुआ-सा, थाह लेता हुआ-सा बोला।

प्रश्न ऋषि का अनजाना न था। वह उसका नित्य का अतिथि था। नित्य वह जिस प्रकार अपनी शंका का समाधान करता था, उपाध्याय के प्रति भी बोला।

"तुम ज्ञान की परिधि से बाहर हो, उपाध्याय। अज्ञान के राज्य में मोहान्धकार का विस्तार होता है और उसकी श्याम-रजनी में शंकाओं का प्रजनन। दुर्बल मानव जब नत-मस्तक हो शंकाओं के प्रबल प्रभंजन से आक्रान्त हो व्यथित हो उठता है तब ये ही शंकाएँ उसके विनाश के बीज बोती हैं और उस अभागे संशयात्मा का निधन हो जाता है। उपाध्याय, सावधान हो, कालरात्रि का उदर बड़ा है—उसके द्वारा कवलित न हो।"

"महर्षि, काव्य का जाल प्राचीन है, अति प्राचीन। इसका विलम्बन प्राथमिक दर्शकों द्वारा ही प्रारम्भ हुआ था।" उपाध्याय ने दबे स्वर में कहा।

उसके शब्द उसके हृदय में ही क्रान्ति का वातावरण उपस्थित कर रहे थे। फिर भी रह रह कर उसे बोध हो रहा था कि मैं मर्यादा के प्रति कुछ उच्छृंखल हो रहा हूँ।

धीरे धीरे उपाध्याय के चतुर्दिक ब्रह्मचारियों की संख्या बढ़ती जा रही थी। मार्त्तंड-लोकायत के समस्त नगर में उन्होंने अपने उपाध्याय की पराजय स्वयं देखी थी। अब वे उत्कंठित हो कुलपति की ओर देखने लगे।

कुलपति बोला—"उपाध्याय, चित्त को स्थिर कर वेद-ब्रह्म की उपासना में लगाओ। ईश्वर अपने उपासकों की रक्षा करेगा। समाधि में बाह्य चेतना को अन्तर्मुखी कर स्थितप्रज्ञ हो। कल्याण होगा।" ऋषि के शब्द शक्तिरहित थे, उसका हृदय आकुल था, असंयत।

वह पर्णकुटी में लौट गया।

उपाध्याय भी गुनता हुआ लौटा—सारा शब्दाडम्बर है, वाग्जाल, अनृत!

आज मार्तंड और ऋषि का वाद-विवाद है। उनके विचारों की सत्यता का निर्णय तर्क से जनता के सामने होगा। ऋषि के ब्रह्मचारियों ने कुलपति की ओर से उनके अनजाने लोकायत को चुनौती दे दी थी। कुलपति, गुरु और उपाध्याय को देवतुल्य माननेवाले शिष्यों को यह कैसे सहा हो सकता था कि लोकायत खुले नगर-प्रांगण में उनके आचार्य को अप्रतिभ कर दे।

कई दिनों से इस दिन की प्रतीक्षा हो रही थी। सारा नगर, समस्त प्रदेश इस शास्त्रार्थ के निमित्त उत्सुक था। कई दिनों पूर्व ही नगर में बाहर के जनपदों से आ आकर लोग भर रहे थे। सभी शिष्य और आचार्य, ऋत्विज और श्रोत्रिय, ब्रह्मचारी और

गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी। आर्यों की सारी विचारधाराएँ मत-मतान्तर आज नगर में आ पहुँचे थे, भर गए थे। पुरुष-नारी, युवा-वृद्ध कुतूहलपूर्वक आज की चर्चा के लिए लौ लगाए हुए थे। गुरुकुलों में कितनी बार सम्भावित शास्त्रार्थ के विषय पर उमंगभरी विवेचना हो चुकी थी। कितने ही शिष्य, कितने ही आचार्य, ऋषि और मार्तंड के वाद-विवाद का क्रम निश्चय कर उस पर अपने निर्णय दे चुके थे।

नगर के समीपस्थ तपोवन में भी कुछ कम संघर्ष न था। आचार्य तो किसी प्रकार संयत हो अपने भीतर उठनेवाले भावों का संयमन करते, परन्तु ब्रह्मचारियों की वाग्धारा, सरिता में स्नान करते समय, खेल और विश्राम के समय, अध्ययन-अधि-शीलन के समय लताओं के कुंजों में, गुल्मों के झुरमुटों में सर्वत्र बहा करती।

उपाध्याय के आचरण में यकायक गम्भीरता आ गई थी। उसकी चुप्पी में प्रभंजन का वेग निहित था। सत्य की उपलब्धि की सम्भावना से उसके भीतर एक प्रकार की गुदगुदी-सी उठती और वह रह रहकर मुसकुरा उठता। परन्तु उसकी मुस-कुराहट में कभी कभी दबी वेदना का अनुभव होता और सहसा उसकी मुसकान उसी दबी वेदना की कसक में घुट जाती। सत्य की उपलब्धि के साथ ही जो एक छिपे भय का जब तब आभास होता वह सर्वथा कल्पना ही नहीं था। वह सोचता—यदि मार्तंड का तर्क सत्य है तो इस आर्य-परम्परा का क्या होगा?

ऋग्वेद के मन्त्रद्रष्टा, ब्राह्मण-आरण्यकों के उपदेशक, उपनिषदों के आरुणि और याज्ञवल्क्य क्या अनृत के उपासक थे? फिर वह कहता—सत्य की प्रतिष्ठा होनी उचित है, वह ऋषियों के पक्ष में हो अथवा विपक्ष में। परन्तु वैदिक साहित्य का प्रसार कल्पना-मात्र, अतीत के महापुरुषों की विदग्धता काल का प्रहसनमात्र है, यह विचारते उसे कष्ट हुआ। वह जानता था ऋषि के पास उसकी शंका का समाधान नहीं है, यदि मार्तंड के पास हुआ तो ऋषि की अवमानना होगी और ऋषि के साथ ही सारे आर्य-साहित्य की।

"पर हो, उससे मुझे क्या? मेरे अच्छा-बुरा लगने से तो वस्तुओं की नित्यता और सत्य की सारता वा निस्सारता में किसी प्रकार का अन्तर पड़ नहीं सकता। फिर जिस सत्य की घोषणा करते हुए-से ब्रह्म-ज्ञान के साहित्यरूप ये स्तम्भ यदि अस्थिर आधार पर खड़े सिद्ध हुए तो असत्य को अपनाने के लिए ही मेरी अभिलाषा क्यों हो?" उपाध्याय ने धीरे धीरे अपने आपसे कहा। उसकी चेष्टा विविध प्रकार की भावनाओं से, उनके घात-प्रतिघात से इस प्रकार विकृत होती रहती।

उपाध्याय धीरे-धीरे उत्सुक, अन्यमनस्क, आकुल हो सभा-भूमि की ओर चल पड़ा, अकेला, मुग्ध। उसके अन्तेवासी और आश्रम के दूसरे ब्रह्मचारी बहुत पूर्व ही चल पड़े थे।

× × × ×

नगर के अन्य नागरिक भी वेग से सभास्थल की ओर बढ़े जा रहे थे। कुछ के लिए तो यह आयोजन एक कुतूहलमात्र था, कुछ में सत्य की खोज की लगन थी, कुछ प्राचीन परम्परा की रक्षा के अर्थ मरे जाते थे। अधिकांश इस आशा से दौड़े जा रहे थे कि आज लोकायत की इस 'प्रतिज्ञा' निस्सार सिद्ध होगी और वैदिक सूर्य की प्रखर किरणों से अज्ञानान्धकार छँट जाएगा। वेदों की गरिमा लोग नए सिरे से समझेंगे और वाममार्ग विध्वस्त होगा।

नगर में होम-याग आज कुछ शिथिल पड़ गए। कुछ ने उन्हें छोड़ते हुए कहा—आज जब इनकी सत्ता का पुनरुत्थापन होगा कल इनको और अधिक लौ से अपनाएँगे।

× × × ×

तपोवन में उपाध्याय ने होम अनिश्चित मन से किया था। आचार्यों के साथ ऋषि जब अशान्ति का अन्तरतांडव दबाए होमकुंड के समीप बैठा, उसके मुख पर उद्वेग के चिह्न स्पष्ट झलक रहे थे। भीतर उठती भावनाओं की दौड़ मानों बाहर की आकार-चेष्टाओं पर अपनी छाया डाल रही थी। मन को साधे ऋषि ने इन्द्र से शक्ति और अग्नि से ज्ञान-प्रतिभा की भिक्षा माँगी। उधर मार्तंड इन्द्रावरुण, त्रिधा अग्नि आदि पर ही आघात करने पर उतारू था। इतर आचार्य ऋषि के स्वर में स्वर मिला रहे थे—ॐ अयन्त इध्म आत्मा जातवेदसे नेध्यस्व वर्द्धस्य चेद्ध वर्धय। चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा—परन्तु

उनका ध्यान जातवेदस् से हटकर मार्तंड की ओर लगा था, तपोवन से दूर नगर-प्रांगण में।

× × × ×

नगर के ब्राह्मण-गृहस्थों की वास-भूमि में सबसे अधिक व्यग्रता थी। ब्रह्म और वेदों का निरादर करना उनको संस्कृति पर आघात करना था। ब्राह्मण, सत्य ही बड़े व्यग्र हो उठे थे। बड़ी बड़ी संख्याओं में उनके दल के दल सभास्थल की ओर चले जा रहे थे। केवल हँसोड़ क्षुरप्र अपनी धुन में मग्न था।

क्षुरप्र का प्रकृत नाम तो अगस्त्य था परन्तु उसके व्यंग्य बाणों की विशेषता से उसका नाम क्षुरप्र पड़ गया था। कृत्रिमता का तो वह शत्रु था, समाज के अदूरदर्शी नेताओं का वैरी। उदारता उसमें ऐसी थी कि विपरीत से विपरीत बात में भी यदि सार्थकता होती तो वह उसे झट अपना लेता। कुरीतियों का वह बड़े पौरुष से विरोध करता। उसमें क्षमता थी और उसी बल पर वह समाज के शक्तिशाली नेताओं तक को अनौचित्य पर ललकारता, चुनौती देता। परन्तु उसके विरोध में हास्य था, आघात में प्रहसन। वह अद्वितीय कुशाग्रबुद्धि था। उसकी चोट में व्यंग्य की प्रचुरता रहती परन्तु उसके होंठों पर मुसकान खेला करती, जिससे उसका मुख सदा प्रफुल्ल बना रहता।

क्षुरप्र ने समवयस्क यज्ञसेन को गोवत्स से बलपूर्वक पृथक करते हुए कहा—यज्ञसेन, कुछ उसका भी भाग होता है, रहने दे।

यज्ञसेन झल्ला उठा। गोवत्स छूटकर माँ के थन से फिर जा

लगा था। यज्ञसेन त्रुरप्र को झटकारकर गोवत्स के पीछे दौड़ा। गोवत्स भागा। जब तक उसके पीछे भागता यज्ञसेन माधवी-निकुंज की आड़ में हुआ त्रुरप्र ने दूसरी गाय का वत्स निरर्गल कर दिया। वह भी माँ के स्तनों से आ लगा।

त्रुरप्र चिल्ला उठा—यज्ञसेन, यज्ञसेन, विडाल ने दूध में मुँह लगा दिया। दौड़ो, दौड़ो।

'विडाल' दूसरी गाय का बछड़ा था जिसे त्रुरप्र ने छोड़ दिया था। यज्ञसेन ने प्यार से बछड़े का नाम 'विडाल' रखा था। यज्ञसेन ने समझा कि बिल्ले ने दूध के मटके में मुँह डाल दिया। हाथ में आया बछड़ा छूट गया और वह उतावली में पीछे दौड़ा। परन्तु मटके के समीप मार्जार को न देख उसे हाथ आए वत्स के छूटने का स्मरण आया और उसने सकोप त्रुरप्र की ओर देखा।

त्रुरप्र ने गाय की ओर संकेत कर कहा—बुद्धिभ्रष्ट ब्राह्मण यज्ञसेन, अरे उधर देख उधर—कृष्णा गो की ओर। तेरा प्रिय 'विडाल' तुझसे भाई का प्रतिशोध ले रहा है।

यज्ञसेन ने अकचकाकर कृष्णा की ओर देखा और पलक मारते वह उसकी ओर दौड़ा। कृष्णा हाल की ब्याई थी। यज्ञ-सेन को अपनी ओर बढ़ते देख वह उस पर झपटी। यज्ञसेन पीछे की ओर भागा पर उसका पाँव गोबर पर पड़ा और वह तुरन्त पृथ्वी चूमने लगा।

"हाय! हाय!" करता त्रुरप्र हँसी रोके यज्ञसेन की सहायता को बढ़ा।

क्रोध से तमतमाया यज्ञसेन चिल्ला उठा—रहने दे, रहने दे, दुष्ट क्षुरप्र। तू वंचक है, क्रूरकर्मा।

यज्ञसेन गोबर से सन गया था। क्रोध के मारे वह और फैलकर गोबर पर लेट गया।

"अरे मेरे प्रिय यज्ञसेन, उठ उठ। तुझे विडाल की सौगन्ध, कृष्णा की सौगन्ध।" क्षुरप्र ने यज्ञसेन की भुजा पकड़ ली।

यज्ञसेन ने भुजा छुड़ाते हुए कहा—चल, हट, तू नारकी। विडाल और कृष्णा क्या मेरे सगे-सम्बन्धी हैं?

इसी समय सभास्थल की ओर जाते हुए कितने ही ब्राह्मण उच्चस्वर से आलाप करते कुछ दूर से निकले। क्षुरप्र ने उन्हें पुकारा। उनका स्वर सुनते ही यज्ञसेन विद्युत् की भाँति उठकर फिर नीचे झुका जैसे गोबर उठा रहा हो। क्षुरप्र के पेट में हँसते हँसते बल पड़ गए थे। उत्तरीय का कोना मुँह में ठूँसे वह हँसी रोकने का प्रयत्न कर रहा था। एक हाथ आगे की ओर सतर्क था—कहीं यज्ञसेन गोबर से आक्रमण न कर बैठे। लोगों का स्वर सुन यज्ञसेन यकायक उठा और पलमात्र में घर के भीतर जा पहुँचा।

भीतर ही से चिल्लाकर वह बोला—अरे दानव क्षुरप्र, तनिक वत्स को झपटकर पकड़ ले नहीं सन्ध्या को निराहार ही रह जाना पड़ेगा। खीर तो गई ही, सायंतन का होम भी जाता रहेगा। क्षुरप्र तुझे वेद की सौगन्ध, ब्रह्म की सौगन्ध!

"मार्तंड के सकाश से लौटने पर तुझे होम-याग की आव-

श्यकता ही नहीं पड़ेगी, यज्ञसेन, और न मुझे वेद, ब्रह्म की सौगन्ध का भय ही रह जाएगा।" नेत्रों में जल भरे चुरम ने हँसी रोकते हुए कहा।

"अरे नरपिशाच, जा तू फिर अपने सगोत्र मार्तंड के समीप। मैं वाममार्गियों की छाया भी नहीं छूता। अरे अग्निदास! अरे घोटक!" यज्ञसेन ने चुरम को धमकाते हुए दासों को पुकारा।

धमकी ठीक बैठी। यज्ञसेन और दूसरे अनेक सहचर चुरम के आनन्द के साधन थे। उन्हीं पर वह अपनी वाक्पटुता की धार पैनी किया करता था। उसके बिना मार्ग कैसे कटता? चुरम सहम गया। हँसी का स्रोत धीमा पड़ चला।

इधर दासों ने गोवत्सों को बाँध लिया था। लोग भी यज्ञसेन के द्वार की ओर मुड़ चुके थे।

वह धीरे से बोला—भाई यज्ञसेन, झट वस्त्र बदल ले, लोग आ पहुँचे। वत्सों को दासों ने बाँध लिया।

"क्या सच? पर तू मिथ्यावादी है, वंचक, वेद-निन्दक, लोकायतों का नेता···" यज्ञसेन ने आगन्तुकों की पदध्वनि सुन अपना स्वर धीमा कर लिया।

चुरम ने आगन्तुकों से साग्रह कहा—आप लोग तनिक ठहरें। यज्ञसेन धेनुसेवा कर रहा था।

वस्त्र के अर्थ यज्ञसेन कक्ष में इधर से उधर, पर्यंक के ऊपर-नीचे चढ़-उतर रहा था। चुरम की बात सुनकर उसने अधर काटा—"कहीं वह गिरनेवाली बात न कह दे"—उसने शंका की

सुरभ्र ने कहा—ब्राह्मण गो……

यज्ञसेन ने विचारा—अरे कहीं गोबर की बात न कह दे। वह दम साधे भीतर किवाड़ से लगा खड़ा था। सुरभ्र के मुख से 'गो…' निकलते न निकलते उसने खाँसकर संकेत किया—मैं सुन रहा हूँ।

सुरभ्र हँस पड़ा।

"ब्राह्मण गोसेवक है।" उसने बात पूरी की।

यज्ञसेन की जान में जान आई। वस्त्रों के लिए फिर दौड़-धूप मच गई—कक्ष में चतुर्दिक, पर्यंक के ऊपर-नीचे।

आगन्तुकों ने जो सुरभ्र की मुद्रा देखी तो वे भी हँस पड़े। यज्ञसेन फिर किवाड़ से कान लगाकर खड़ा हो गया। लोगों ने विचारा सुरभ्र के हँसने का कुछ अर्थ है। पूछा—सुरभ्र, क्या है?

यज्ञसेन ने हृदय पर हाथ रखकर फिर खाँसा। सुरभ्र फिर हँस पड़ा। यज्ञसेन ने मुट्ठियाँ कस लीं, दाढ़ों को पीस लिया, नेत्र मींच लिए।

सुरभ्र ने कहा—यज्ञसेन वस्त्र बदल रहा है।

"भूमिका बाँधी इसने"—यज्ञसेन ने कंठ के भीतर ही भीतर कहा। फिर भुजाएँ झकझोर दीं। दाहिनी भुजा लटकती वीणा के तारों में लगी। स्वर हुआ झन-न्-न्… ।

"शीघ्रता करो, यज्ञसेन पूर्वाह्न हो चला, लोग प्रतीक्षा में खड़े हैं। यह क्या मूर्छना कर रहे हो? वस्त्र पहिनो।" सुरभ्र ने स्मरण दिलाया।

"यज्ञसेन ! यज्ञसेन !" बाहर से कई जनों ने पुकारा।

कक्ष के भीतर फिर दौड़-धूप मची। शीघ्रता में यज्ञसेन ने जो पर्यंक की पट्टी पर दक्षिण पाद रखा, दूसरी पट्टी उठ गई। यज्ञसेन धड़ाम से नीचे आ रहा। नीचे से उसने अधोवस्त्र गृह के आँगन में सूखता देखा। दौड़कर उसने उसे खींच लिया। उत्तरीय भी अधोवस्त्र में लिपटकर हाथ में आ गया। अब उत्तरीय के अर्थ हाय हाय मची। इधर देखा, उधर देखा, खूँटी पर, गवाक्ष में। दीवार पर लटकती पोटली हड़बड़ी में फाड़ डाली।

इतने में बाहर से कई कंठों से 'यज्ञसेन ! यज्ञसेन !' की पुनः चिल्लाहट हुई। पोटली को फेंक जब यज्ञसेन ने अधोवस्त्र उठाया तब उत्तरीय का छोर दिखाई पड़ा। उसने अपना सिर पीट लिया। फिर 'आया, आया' कहता, वस्त्र धारण कर वह वेग से बाहर आया। दाँत खुले थे, नेत्र भरे कपोलों में अधमिचे।

हँसते हुए तत्परता से लोग सभास्थल की ओर चले।

मार्ग में अग्निमित्र हवन-कुंड में सर्वाहुति डाल रहा था। वह भी तुरप्र का बालमित्र, सहपाठी था।

तुरप्र ने कहा—अग्निमित्र, रख दे स्रुवा। सभा-स्थल से लौटने पर फिर इसकी आवश्यकता न होगी। इसे भी अग्निदेव की भेंट कर दे।

सब हँस पड़े। अग्निमित्र ने कानों पर हाथ रख लिए।

सुविस्तृत पट-मंडप के नीचे जन-समुदाय बैठा था। वितान के चारों ओर आम्र-पल्लवों और कमलों की झालर लटक रही

थी। महर्षि और वामाचार्य के विमान कुछ ऊँचे बने थे। उनके पृष्ठ कदली-स्तम्भों और विविध कुसुमों से सुसज्जित थे। महर्षि की श्वेत जटाएँ मस्तक पर बँधी थीं। सुदीर्घ, शुभ्र वर्ण पर शुक्ल वसन छज रहा था, भुजाओं, वक्ष और ललाट पर चन्दन चमक रहा था। ज्ञानविदग्ध गम्भीर मुखमंडल शान्तिपूर्वक कभी इधर कभी उधर रह रह कर फिर जाता था। अनेक मस्तक दृष्टि मिलते ही श्रद्धा से झुक कर अभिवादन करते और ऋषि का आशीर्वादसूचक कर धीरे धीरे उठता, गिरता। विमान पर पीछे आर्यधर्म के अनेक आचार्य और गुरुकुल के उपाध्याय बैठे थे। उनके पीछे शिष्यवर्ग था। विमानों के मध्य तथा चतुर्दिक गृहस्थ—नर नारी युवा-वृद्ध—, वानप्रस्थ, संन्यासी आसीन थे।

महर्षि के सम्मुख कुछ ही दूरी पर लोकायत का विमान था जिसपर प्रसन्नवदन वामाचार्य विराजमान था। सुन्दर प्रौढ़-लोकायत का सौन्दर्य दर्शनीय था। सुपुष्ट तन जहाँ तहाँ चन्दन-चर्चित था। नीचे की धोती अंगुठ तक पदों को ढके हुए थी। ऊपर स्कन्धदेश पर से होता हुआ उत्तरीय दोनों ओर नीचे भूमि तक लटक रहा था। एक स्थूल पुष्पहार यज्ञोपवीतवर्जित वक्ष को ढक रहा था। उसके कर सामने पड़े पुष्पस्तवकों से खेल रहे थे। स्मित मुद्रा दर्शकों के हृदय में आशा का संचार करती थी। उसका आनन्दसूचक मुख आकर्षण का केन्द्र था। निस्संकोच दृष्टि आत्मविश्वास की परिचायिका थी। कभी किंचित संकुचित

कभी विस्फारित दृष्टि से वह जनता की ओर देखता फिर थोड़ा मुसकरा उठता। उसके आनन्दसूचक नेत्र मेधा की प्रखरता से चमक रहे थे। उसकी दया में तिरस्कार का आभास होता। सुन्दर सुडौल मस्तक पर घने श्याम केश सामने से पीछे की ओर फिरे हुए थे जिससे ललाट की चौड़ाई और बढ़ी हुई सी दिखाई पड़ती थी। केशों की कुंचित अवली कानों से होती हुई पीछे ग्रीवा पर फैली वायु से खेल रही थी। रह रह कर लोकायत दोनों कर केशों पर सामने से पीछे तक फेर देता और तब कन्दुक-से लटकते स्वर्ण-कुंडल उनके भीतर से निकल कपोलों पर चमक उठते। जन-समुदाय की दृष्टि वामाचार्य पर टिकी थी, परन्तु उसमें अधिकतर उसके विरुद्ध कामना थी। लोकायत निश्चिन्त था।

मध्यस्थ-विमान पर अनेक निर्णायक बैठे थे। उनका प्रधान वयोवृद्ध यास्क था।

मध्यस्थ-विमान के समीप बैठे तुरश्र ने यज्ञसेन को खोद कर कहा—यज्ञसेन, आज बड़ा संकट है।

फिर अग्निमित्र की ओर संकेत कर उसने पूछा—क्या अग्निमित्र का गायत्री-मंत्र आज कुलपति का कवच बनेगा?

यज्ञसेन ने अग्निमित्र की ओर देखा फिर तुरश्र की ओर देख कर मुसकरा दिया। अग्निमित्र के होंठ हिल रहे थे। उसने तुरश्र की ओर अपनी कठोर दृष्टि फेरी।

फिर पूछा—क्या?

क्षुरप्र ने उत्तर में कुछ गम्भीर हो पूछा—क्या सपादलक्ष हो गये ?

"क्या सपादलक्ष ?" अग्निमित्र ने फिर पूछा, चोर जैसे सेंध पर पकड़ गया हो।

"अरे वही जो बुद्बुद् कर रहे हो।" क्षुरप्र दूसरी ओर मुँह फेर कुछ अन्यमनस्क-सा बोला। समीप बैठे लोगों में से कुछ मुसकरा पड़े।

मुख कुछ विकृत कर अग्निमित्र ने कहा—'चुप'—और फिर बुद्बुद् करने लगा।

यज्ञसेन और क्षुरप्र हँस पड़े।

× × × ×

मध्यस्थ ने संकेत किया। लोकायत ने ऋषि के विमान पर पुष्प फेंके, ऋषि ने लोकायत पर।

ऋषि ने स्वर से पढ़ा—असतो मा सद्गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्मा अमृतं गमय।

मध्यस्थ-विमान के समीप से उच्चस्वर हुआ—
असतो मा सद्गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्मा अमृतं गमय।

अग्निमित्र ने ऋषि के वाक्य दुहरा दिए। सबने उसकी ओर दृष्टि फेरी। कुछ उठते हुए-से उसने तीव्रतर स्वर में पुनः



पढ़ा—शन्नो देवीरभिष्टये आपो भवन्तु पीतये । शंयोरभि:स्रवन्तु नः ।

यास्क ने कुछ झिझक कर नीचे पार्श्व की ओर देखा । लोकायत ने पहले अग्निमित्र की ओर देखा फिर ऋषि की ओर । उसका मुख-कमल कियत् हास्य से खिल उठा । सुरम ने अग्निमित्र को बलपूर्वक पकड़ कर बैठा लिया ।

× × ×

मध्यस्थ ने गम्भीर हो कहा—'कार्य प्रारम्भ हो' । फिर ऋषि की ओर देखकर वामाचार्य से कहा—वय की न्यूनता से वाद का आरम्भ आप करेंगे । वैदिक सिद्धान्तों की प्राचीनता के कारण उत्तर का अधिकार ऋषि को होगा और 'प्रतिज्ञा' का आपको । आप प्रतिज्ञा करें ।

कुछ हँसता-सा लोकायत बोला—महर्षि, वैदिक-सिद्धान्तों की प्राचीनता हेत्वाभास है, असिद्ध । फिर भी आपके उस कथन पर मेरा कुछ वक्तव्य नहीं । परन्तु 'प्रतिज्ञा' तो हो चुकी । ऋषि ने उसमें मध्यस्थ की अनुमति की आवश्यकता नहीं समझी ।

लोग विस्मित हो उठे । उपाध्याय ने कुलपति की ओर देखा और अग्निमित्र का मुख अवाक् हो कुछ खुल गया । निरुक्तकार ने कुछ सतर्क हो पूछा—सो कैसे ?

मार्त्तंड अग्रयास बोला—मन्त्रोच्चारण के समय ही 'शमय' पद में ऋषि ने 'प्रतिज्ञा' की प्रतिष्ठा कर दी । अब केवल प्रश्न—पूर्व-पक्ष—मेरा है ।

जनता की उत्सुकता बढ़ी नेत्र मध्यस्थ पर जा टिके। ऋषि का हृदय धक-धक करने लगा। उपाध्याय ने लोकायत के अद्भुत तर्क की प्रखरता समझी, क्षुरप्र का हृदय भी उसे सराह उठा। यज्ञसेन, अग्निमित्र और अधिकांश जनता ने मार्त्तंड का अभिप्राय नहीं समझा।

मध्यस्थ ने स्वीकार किया—'प्रतिज्ञा' हो चुकी। प्रार्थना सस्वर होने के कारण ऋषि की केवल अपनी नहीं रही। उस पर सभा का अधिकार हो गया और वह प्रतिपक्ष का लक्ष्य बनी। 'गमय' में जड़ प्रकृति से भिन्न चेतन, कार्यक्षम, शक्ति का निर्देश है—अतः 'प्रतिज्ञा' हो चुकी, परन्तु अनजानी। अब प्रतिपक्ष की इच्छानुसार कार्य होगा—यदि उसे स्वीकार हो तो वह स्वयं अपनी 'प्रतिज्ञा' करे अथवा यदि उसे आपत्ति न हो तो ऋषि अपनी 'प्रतिज्ञा' का विस्तार करे।

यज्ञसेन जन-समुदाय का मत ध्वनित करता-सा क्षुरप्र से बोला—साधु, साधु। 'प्रतिज्ञा' का लाभ ऋषि को मिला।

क्षुरप्र ने कुढ़कर कहा—मूर्ख, प्रश्न का अधिकार अनर्थ करता है, प्रतिपक्ष का अस्त्र हो जाता है।

ऋषि ने स्पष्ट 'प्रतिज्ञा' की—ईश्वर विश्व का कर्त्ता, पोषक और अन्तक है। 'गमय' में उसकी अनन्त शक्ति की परिचर्या है।

प्रतिपक्ष ने आपत्ति की—प्रमाण?—प्रत्यक्ष?

"प्रमाण है किन्तु प्रत्यक्ष नहीं।"

"कभी था?"

"कभी नहीं—'कः वा ददर्श' ?"

"वेद ऋषिकृत हैं अथवा अपौरुषेय, ईश्वरकृत ?..."

मध्यस्थ बोला—प्रतिज्ञा अभी प्रतिष्ठित नहीं हुई—ईश्वरत्व अभी विवादग्रस्त है, पूर्वपक्ष की आपत्ति है।

मार्त्तंड बोला—'ईश्वरकृत' शब्द सापत्ति स्वीकार करता हूँ। उत्तरपक्ष वक्तव्य करे।

ऋषि बोला—वेद अनादि हैं, अपौरुपेय, ईश्वरकृत। द्रष्टा केवल 'साक्षात्कृतधर्माणः' ऋषि हैं। वे केवल उस ज्ञान-शृंखला का दर्शन करते हैं।

"जब वेद अनादि हैं तब उनका कारण कैसा ?"

ऋषि कुछ स्तम्भित हो गया, अग्निमित्र व्यथित। उपाध्याय झिझका, तुरग कुछ व्यग्र हो उठा।

लोकायत ने सँभाला—प्रश्न सापत्ति छोड़ दिया। अब ईश्वर में प्रत्यक्ष प्रमाण ?

"ईश्वर में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं। प्रत्यक्ष प्रमाण सर्वथा सत्य भी नहीं—पुत्र पिता को देखता है, कदाचित् पितामह को भी, परन्तु प्रपौत्र प्रपितामह को प्रायः नहीं देखता और प्रपितामह से पूर्व तो निस्सन्देह नहीं। फिर क्या प्रपितामह आदि की स्थिति संदिग्ध है ?"

"परन्तु पुत्र पिता को देखता है, पिता अपने पिता को और उसका पिता अपने पिता को। इस प्रकार यह शृंखला टूटती नहीं। यह सापेक्ष प्रत्यक्ष है।"

मध्यस्थ ने पुकारा—विषयान्तर ! ऋषि ईश्वर के अस्तित्व में प्रमाण दे।

ऋषि बोला—प्रत्यक्ष आकार का दर्शक है, ईश्वर निराकार है। मनुष्य की परिमित मेधाशक्ति असीम की कल्पना नहीं कर सकती अतः अनुमान प्रमाण ही उसके प्रति युक्तियुक्त होगा।

"वक्तव्य में तर्कदोष है—यदि परिमित मेधा असीम की कल्पना नहीं कर सकती तो मानव अनुमान की शक्ति ही किस प्रकार असीम का स्पर्श कर सकती है ? और यह तर्क अनुमान प्रमाण के औचित्य का कारण उपस्थित नहीं करता। परन्तु सापत्ति यह भी स्वीकार करता हूँ, अनुमान प्रमाण प्रस्तुत हो।" सस्मित वदन मार्त्तंड नेत्रों की ज्योति पसारता हुआ-सा बोला।

"जिस प्रकार पुत्र-कार्य से पिता-कारण का अनुमान होता है उसी प्रकार विश्व-कार्य से पिता-कारण का अनुमान सत्य सिद्ध होता है। और क्योंकि अनादि-प्रवाह सृष्टि का वह जनक है, स्वयं चेतन, सनातन, अनादि है।"

"अनेक हेत्वाभास ! अनेक-हेत्वाभास !" प्रतिपक्ष बोल उठा।

"अनेक हेत्वाभास ! अनेक हेत्वाभास !" मध्यस्थ ने पुकारा।

"हेत्वाभास !" उपाध्याय के हृदय ने स्पष्ट कहा।

सुरप्र की भ्रुकुटियों में बल पड़ गए। अग्निमित्र ने कानों को ढक लिया। मार्त्तंड हँसता रहा।

लोकायत बोला—पुत्र का पिता को देखना एक परम्परा है—यह साथ ही, जैसा कह चुका हूँ, सापेक्ष प्रत्यक्ष प्रमाण भी है।

ईश्वर को कभी किसी ने नहीं देखा। रही अनुमान की बात—सो पूर्व प्रतिज्ञा में एक और प्रतिज्ञा हुई—सृष्टि का अनादित्व-वाद विवादास्पद है, विश्व कार्य है यह भी सन्दिग्ध है, दूसरी प्रतिज्ञा है, साध्य। परन्तु सापत्ति स्वीकृत। एक प्रश्न—क्या सृष्टि का प्रवाह अनादि है ?

अप्रतिभ ऋषि ने स्वीकार किया—हाँ।

उपाध्याय सकुच गया। मध्यस्थ ने नेत्र कुछ संकुचित कर लिए। मार्त्तंड के नेत्र अर्थ-भरे थे, चमक उठे।

उसने पूछा—फिर अनादि-प्रवाह-सृष्टि का कर्त्ता कैसा ?

उपाध्याय ने जैसे स्वयं पूछा।

"जैसे गंगा का हिमाचल है।" उत्तर मिला।

"यह अर्द्ध सत्य है। गंगा का आरम्भ हिमाचल नहीं। हिमाचल का जल मेघ का है और मेघ का जल समुद्र का, फिर समुद्र का जल गंगा का—प्रवाह अविच्छिन्न है, अनादि, अनन्त। न कारण है, न अन्तक होगा। वृत्ताकार प्रवाह में ओर-छोर, आदि-अन्त नहीं होते। जहाँ आदि है वहाँ कारण है, जहाँ अनादित्व है वहाँ कारण नहीं। भला बीज प्रथम है अथवा वृक्ष ?"

जनता ऋषि की ओर आसरा लगाए देख रही थी। वह निरुत्तर था।

मार्त्तंड फिर बोला—विश्व कार्य कैसे है ? कैसे हो सकता है ? पुत्र का कारण पिता है और पिता का उसका पिता······

मध्यस्थ ने आपत्ति की—पुनरुक्ति।

मार्त्तंड बोला—वक्तव्य पूरा सुन लिया जाय, पुनरुक्ति सकारण है, सार्थक।

मध्यस्थ ने स्वीकृति-सूचक संकेत किया।

मार्त्तंड ने वक्तव्य पूरा किया—विश्व कार्य कैसे है? कैसे हो सकता है? पुत्र का कारण पिता है और पिता का उसका पिता। इस परम्परा में कहीं उच्छृंखलता नहीं, कहीं किंचित अभाव नहीं। फिर पुत्र दोनों हैं—पुत्र भी, पिता भी। पुत्र के रूप में वह पिता-कारण का कार्य है और पिता के रूप में भावी पुत्र-कार्य का कारण। यह व्यापार समस्त प्राणियों का है फिर विश्व कार्य क्योंकर हुआ? वह तो कारण-कार्य की अनादि परम्परा है और अनादि परम्परा का कोई स्रष्टा नहीं।

मध्याह्न ढल रहा था। जनता अपनी अशक्यता पर क्रुद्ध रही थी। अग्निमित्र ने कानों पर हाथ रखकर कहा—"स्वस्ती, स्वस्ती।" सुरभ क्षुब्ध था, यज्ञसेन मूक, उपाध्याय मूढ़?

लोकायत ने प्रश्न किया—यदि ईश्वरत्व को सापत्ति ग्रहण करें तो प्रश्न है वह सृष्टि कैसे करता है?

मध्यस्थ ने प्रश्न को अप्रासंगिक कहा। प्रतिज्ञा गिर चुकी थी, प्रश्न उठता ही न था।

"उत्तरपक्ष की इच्छा पर इसे छोड़ा जाय।" लोकायत ने प्रार्थना की।

मध्यस्थ ने ऋषि की ओर देखा, कुछ आवेग का आभास हुआ। उसने उत्तर की स्वीकृति दी।

ऋषि बोला—जड़ प्रकृति और चेतन आत्मा की सहायता से वह सृष्टि करता है। आत्मा कर्मानुसार अनन्त योनियों में जाता है।

"यदि प्रकृति और आत्मा आरम्भ से ही हैं तो उनका सर्जन कैसा?"

"प्रकृति और आत्मा का भी वही स्रष्टा है। मकड़ी की भांति वह सृष्टि रूपी जाले को उदर से उगलकर सृष्टि की क्रीड़ा करता है फिर उसे उदरस्थ कर लेता है।"

निरुक्तकार मुसकराया।

मार्तंड हँसता हुआ बोला—फिर क्या ईश्वर के उदर भी है? वह क्या साकार भी है? फिर उस असीम निराकार की कल्पना का क्या हुआ?

ऋषि सहम गया। अग्निमित्र ने अधर काटा, मुट्ठी कस ली। लोकायत ने और पूछा—और आत्मा के वे कर्म कैसे? अनादि प्रवाह में आत्मा का योनिविधान कैसा? फिर यदि हो भी तो सर्जन की आरम्भिक अवस्था में प्राथमिक आत्मिक सर्जन के समय कर्मों की परम्परा कैसी? और असंख्य अनन्त आत्माओं का असंख्य अनन्त जन्म धारण करने और अन्त को प्राप्त होने वाले प्राणियों में प्रवेश घोर कष्ट-कल्पना है। आर्य सिद्धान्त को इसे छोड़ना होगा।

अग्निमित्र निरंतर प्रबल वेग से गायत्री जप रहा था—देवों से ऋषि को कृत्या के अभिशाप से मुक्त करने की प्रार्थना कर रहा था। पिता की ग्रीवा पर चिबुक रखे एक तीन वर्ष का बालक अग्निमित्र के होंठों का वेग से संचालन बड़े कुतूहल-पूर्वक देख रहा था। पिता की दाढ़ी के छोटे केशों को खींच खींच वह उसे अग्निमित्र की ओर दिखा रहा था। अग्निमित्र ने कड़ी दृष्टि से उसकी ओर घूरा। कदाचित् उसके मंत्र का स्तवन भी इसी पूर्व तीव्रता से कुवाच्य में परिणत हो गया। बालक चीत्कार कर उठा।

यह ऋषि के अन्तर का चीत्कार था।

× × × ×

मध्यस्थ ने प्रतिपक्ष को अपनी प्रतिज्ञा प्रस्तुत करने की अनुमति दी।

लोकायत बोला—सृष्टि अनादि है, अनन्त। इसके कर्ता-कारण का प्रश्न नहीं उठता। कारण और कार्य प्रत्येक वस्तु में निहित हैं। मैं जिस सत्य की व्याख्या प्रश्नों में कर चुका हूँ वह सिद्धान्तरूप में इस प्रकार है—अनादि, अनन्त एक शृंखला है। इसकी पूर्व और उत्तर कड़ियाँ कारण और कार्यरूप में सम्बद्ध हैं। सृष्टि का रूप भूतों के विकार का स्पष्टीकरण है। चेतन शाश्वत-नित्य है जैसे जड़ प्रकृति। चेतन का धर्म है चेतना और प्रकृति का जड़ता, वैसे ही जैसे अग्नि का धर्म है प्रज्वलन और जल का शीतलता। चेतन का धर्म है—वैकारिक

उत्पत्ति, आहार, वर्द्धन, प्रजनन, ह्रास और वैकारिक अन्त। अनन्त संख्या में अनादि काल से चेतन इसी प्रकार जीवन धारण करते और मृत्यु प्राप्त करते रहे हैं, अनन्त काल तक करते रहेंगे। शोक-विषाद उनका नित्य धर्म है। कर्म-अकर्म की व्यवस्था भ्रममूलक।

ऋषि ने आपत्ति की—और पाप-पुण्य?

"वह कल्पित है, भ्रममूलक। शाश्वत, प्राकृतिक, नित्य धर्म से परे चेतन का कोई धर्म नहीं। जीवन मृत्यु का है। मृत्यु के पश्चात् पुण्य का कोई मूल्य नहीं, यश को कोई सुविधा ही नहीं। पापों अथवा दारिद्र्य की छाया मृतक को नहीं छूती। उसके पुत्र-पौत्र सम्पन्न अथवा भिखारी हों तो, उसके यश के विस्तार से पृथ्वी ढँकी हो तो, अथवा उसके अयश से दिगन्त व्याप्त हो तो, मृतक से सम्बन्ध ही क्या? चेतन यहीं उठता है, यहीं खो जाता है।"

पूर्वपक्ष ने आपत्ति की—फिर तो समाज की आवश्यकता नहीं? हित करने का प्रयोजन नहीं?

"है—इस अर्थ कि हम जब तक जीवित रहें आनन्द से रहें और हमारे सुख देने के बदले अन्य भी जीवन-काल में हमारा हित करें।"

"अच्छा, सृष्टि का प्रयोजन क्या है?"

"यह प्रश्न नहीं उठता क्योंकि प्रयोजन स्रष्टा से सम्बन्ध रखता है और क्योंकि विश्व का स्रष्टा नहीं, यह अनादि, अनन्त है—प्रयोजन का प्रश्न नहीं होता।"

"सृष्टि में भेद क्यों है ? पिता के सारे पुत्र सदा एक से क्यों नहीं होते ?"

"क्योंकि व्यक्ति अनेक हैं, पुरुष और स्त्री की इच्छाएँ, सुविधाएँ अनेक, विभिन्न और विविध हैं। काल भिन्नता के साथ साथ उनमें रुचिवैचित्र्य और साधनवैचित्र्य फलते और लय होते रहते हैं—प्रजा में समानता क्योंकर हो ?"

"क्या विश्व के सब विस्मयजनक कार्य और उनके कारण उत्तरपक्ष को ज्ञात हैं ?"

मध्यस्थ ने आपत्ति की—विषयान्तर !

लोकायत बोला—मैं इसका उत्तर दूँगा।

मध्यस्थ ने फिर आपत्ति नहीं की।

लोकायत ने उत्तर दिया—विश्व के सारे विस्मयजनक कार्य मेरे जाने नहीं हैं परन्तु उनके कारण हैं। केवल जाने नहीं हैं। पर जाने जाएँगे।

"किसके द्वारा ?"

"पूर्व और उत्तर दोनों पक्षों के द्वारा।"

"पूर्वपक्ष क्यों जाने ?"

"क्योंकि सत्य की खोज का उत्तरदायित्व पूर्व उत्तर दोनों पक्षों पर है।"

मध्यस्थ मूक था, उपाध्याय मूढ़, चुरप्र चकित। जन-समुदाय कोलाहल-रहित था, अग्निमित्र संज्ञाहीन-सा, ऋषि निरुत्तर।

मध्यस्थ ने लोकायत की विजय घोषित की। परन्तु लोकायत ने मस्तक झुका लिया।

उसने कहा—एक बात और। जय-पराजय सत्य की प्रतिष्ठा नहीं करती। तर्क वंचक है। तर्क की प्रौढ़ता और दुर्बलता की एक परम्परा है। वह अपनी प्रौढ़ता द्वारा कभी पूर्वपक्ष सिद्ध करता है, कभी अपनी दुर्बलता के कारण उत्तरपक्ष। यदि प्रत्येक बार सत्य की पतिष्ठा होती है तो उसमें व्यभिचार होता है, और सत्य एक है अनेक नहीं। उसमें व्यभिचार नहीं हो सकता। अतः तर्क कुछ स्थिर नहीं करता।

उपाध्याय ने शंका की—तब कर्म क्यों करें? अन्तःप्रेरणा से?

"मैं नहीं जानता—परन्तु अन्तःप्रेरणा का कोई अर्थ नहीं। अन्तःप्रेरणा घनीभूत संस्कार हैं। उसमें विकार होते हैं! जो बालपन में था, युवावस्था में नहीं रहा, जो युवावस्था में था वह प्रौढ़ावस्था में नहीं रहा।"

सभा विसर्जित हो गई। धीरे धीरे भीड़ छँट गई। उपाध्याय शक्तिहीन, नीरव, तर्कहीन हो गया था। जब उसने देर बाद मस्तक उठाया गोधूलि धीरे धीरे बढ़कर व्याप्त हो रही थी।

उपाध्याय ने धीरे धीरे कहा—सारा शब्दाडम्बर है, वाग्जाल, अनृत!

[भारतवर्ष के प्राचीन गणतन्त्रों का स्वरूप अब प्रतिष्ठित हो चुका था। इस कहानी में उसी का वर्णन है। कहानी के कई प्रसंग अट्ठ-कथा, महावस्तु, जातक-कथाओं आदि से प्रमाणित हैं। बौद्ध-संघ के अधिवेशनों की कार्य प्रणाली (Procedure) राजनैतिक संघ से ली गई थी। स्वयं 'संघ' शब्द राजनैतिक संघ की छाया है। वज्जिसंघ के कार्यविवरण में लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग हुआ है, जैसे 'आसनप्रज्ञापक', 'गणपूरक' (Whip) 'ज्ञप्ति' (Notice), 'प्रतिज्ञा' (Resolution), 'कम्मवाचा' (Motion), 'छन्द' (Vote), 'शलाका' (Voting Ticket) 'शलाकाग्राहक' (Receiver and Counter of the Tickets, i. e. Secret Ballot), 'पवेनि-पुत्थक' (अपराधी के अभियोग, अपराध दर्ज करनेवाला रजिस्टर), 'राजा' (सभापति), 'उपराजा' (उपसभापति), 'राजुक' (संघ का सदस्य जो ७७०७ राजकुलों के इतने ही प्रतिनिधियों में से एक था), 'विनिश्चय-महामात्र' (अभियोग की सत्यता निश्चित करनेवाला पहला न्यायालय), 'व्यावहारिक' (Lower Judges—दूसरा न्यायालय), 'सूत्रधार' (Doctors of Law—तीसरा न्यायालय), 'अष्टकुलक' (Council of Eight —आठ न्यायाधीशों का न्यायालय)। ये न्यायालय उत्तरोत्तर अपील के थे। परन्तु यदि अभियुक्त किसी एक न्यायालय से निर्दोष प्रमाणित होकर मुक्त हो जाता तो वह आगे के न्यायालय में नहीं लाया जा सकता था। काल छठी शती।]

२०—८—१९४० }   { प्रातः ७—१०
सायं ६—८

१

यज्ञजनित हिंसा से त्रिशला का पुत्र काँप उठा। "देशव्यापी युद्धों से क्षुद्र मानव छिन्न-भिन्न है। यह मनुष्य की ही सृष्टि है, फिर भी वह तृप्त नहीं। यज्ञों के बहाने और हिंसा का विधान करता है! हाय रे भूखा समाज!" मगधराज बिम्बिसार-श्रेणिक के निकट-सम्बन्धी लिच्छवि युवा वर्द्धमान ने इस मानुष हिंसा से संतप्त हो गृह त्याग दिया।

प्राणियों के कष्टों की कसक उसके वक्ष में उठी और वह उनके अर्थ वन वन भागा फिरा। हृदय इतना कोमल था कि एक तिनका तोड़ना भी उसके लिए असम्भव था। जीवों के प्रति अपनी सहानुभूति के कारण वह स्वयं उनके दुःख का अनुभव करता और उनके दमनार्थ व्याकुल हो जाता। बालक के रुदन तक से वह बिलला उठता।

संसार के कल्याण के अर्थ उसने अपने वंश का समृद्ध ऐश्वर्य छोड़ा और निकल गया वह महावन के घने कानन में। तप से सिद्धि और सिद्धि से दुःख को जीतने की उसने सोची। तपश्चर्या



से उसकी काया जर्जर हो गई। चित्तवृत्ति के निरोध से इन्द्रियों के ऊपर उसने विजय की। विजयी वर्द्धमान 'जिन महावीर' की संज्ञा ले फिर संसार-क्षेत्र में उतरा, सत्य की शक्ति और अहिंसा का कवच धारण किए।

'देवत्व-प्राप्ति का अधिकार मनुष्य को है"—इस उपदेश ने श्रोताओं के हृदय में दिव्य कर्मों की अभिलाषा जगाई और लिच्छवियों के देवतुल्य आचरण से मुग्ध तथागत ने उनके संघ को तावतिंश स्वर्ग के देवताओं का अधिवेशन कहा। 'स्याद्वाद' की कल्पना से इहलोक को प्रतिष्ठा मिली। 'अहिंसा' की भावना से जीव को आदर मिला, प्रेम से परस्पर सहानुभूति जगी। महावीर की अहिंसा और प्रेम-शक्ति ने एक बार वज्जियों के काम-मोह का आधार जोर से हिला दिया। आध्यात्मिक शक्ति से स्थूल प्रकृति का पराभव कर स्वयं महावीर ने लोगों के हृदयों में अपनी शक्ति डाली।

तीर्थंकर ने पंच-परमेष्ठिनों में निष्ठा का उपदेश किया। वैशाली के एक-एक भवन से शब्द उठा—

नमो अर्हन्तानं।
नमो सिद्धानं।
नमो आचार्याणं।
नमो उपज्झायानं।
नमो लोये सब्ब साधूनं।

× × × ×



स्वराज्य-सम्भूत शक्ति से समृद्धि बढ़ी, स्वातन्त्र्य के विवेक से नागरिक परम्परा का विकास हुआ। विदेहों और लिच्छवियों के सम्मिलित वज्जि-संघ की शक्ति साम्राज्य-लोलुप अजातशत्रु के नेत्रों में खटकने लगी। गंगा के उत्तर में उसके साम्राज्य-प्रसार में वज्जि-संघ का बड़ा रोड़ा आ अटका। वैशाली की शक्ति नष्ट करने की उसने कितनी ही युक्तियाँ कीं, परन्तु सब निष्फल हुईं। तब उसने उस पर सम्मुख आक्रमण की ठानी।

जब इस कार्य की उपयोगिता पर तथागत के मन के अर्थ कुशिक का अमात्य वहाँ पहुँचा, तथागत ने आनन्द से पूछा—आनन्द, क्या तुमने सुना है कि वज्जि-संघ के अधिवेशन एक पर एक हो रहे हैं और उनमें सदस्यों की संख्या भी सदा प्रचुर रहती है?

"हाँ, सुना है, तथागत।" आनन्द ने कहा।

पुनः मगध के अमात्य ने तथागत का स्वर सुना—

"आनन्द, जब तक वज्जियों के अधिवेशन एक पर एक और सदस्यों की प्रचुर उपस्थिति में होते हैं,

"जब तक वे अधिवेशनों में एक मन से बैठते, एक मन से उठते और एक मन से संघ-कार्य सम्पन्न करते हैं,

"जब तक वे पूर्वप्रतिष्ठित व्यवस्था के विरोध में नियम निर्माण नहीं करते, पूर्वनिर्मित नियमों के विरोध में नव नियमों की अभिसृष्टि नहीं करते, और जब तक वे अतीत काल में प्रतिस्थापित वज्जियों की संस्थाओं और उनके सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करते हैं,

"जब तक वे वज्जि अर्हन्तों और गुरुजनों का सम्मान करते हैं, उनकी मंत्रणा को भक्तिपूर्वक सुनते हैं,

"जब तक उनकी नारियाँ और कन्याएँ शक्ति और अपचार से व्यवस्था-विरुद्ध व्यसन का साधन नहीं बनाई जातीं,

"जब तक वे वज्जि-चैत्यों के प्रति श्रद्धा और भक्ति रखते हैं,

"जब तक वे अपने अर्हन्तों की पूर्ण रक्षा करते हैं,

"तब तक, हे आनन्द, वज्जियों का उत्कर्ष निश्चित है, उनका अपकर्ष संभव नहीं।"

मगध के अमात्य ने यह वक्तव्य सुना।

"मगधराज वज्जियों का पराभव नहीं कर सकते"। उसने धीरे धीरे कहा।

× × × ×

पावा में शान्ति-लाभ करते हुए तीर्थंकर ने भी तथागत का यह वक्तव्य सुना।

"सत्कामना फलवती हो! परन्तु वज्जि-संघ शक्ति का संचय कर चुका है। शक्तिजनित दर्प से अनाचार, अपचार होंगे, समृद्धिजनित व्यसन से विलास, व्यभिचार होंगे। उधर कुणिक की दुरभिसन्धि का झंझावात! वज्जि-संघ, तेरी कौन रक्षा करेगा?" उसने मन ही मन कहा।

२

"मातंग !"

लम्बी कशावाले दक्षिण कर में वाम कर की रज्जुओं को एकत्र करता हुआ किंचित् ग्रीवा मोड़ सारथी ने कहा—देवि।

"तुरगों की गति धीमी कर दो।"

वैशाली के प्रमुख राजपथ पर वायुवेग से दौड़ते रथ की गति धीमी हो गई। चारों अश्वों की कलँगियाँ, जो उन श्वेत धावनों की तीव्र गति के कारण अलक्ष्य हो गई थीं, अब दिखाई पड़ने लगीं। राजमार्ग के दोनों पार्श्व में वायुसेवन के निमित्त जाते हुए सुन्दर सजे नागरिकों की असंख्य पंक्तियाँ अब दृष्टि-गोचर हुईं। सहस्रों नेत्र लिच्छवियों की विख्यात वारवनिता की कमनीय मूर्ति पर आ टिके। अभिवादनों के उत्तर कामसेना ने कभी करों को उठाकर, कभी शिर के ईषत् कम्पन से दिया।

सारथी रास खींचे रथ को धीरे धीरे बढ़ाए जा रहा था। उसने विचारा आज कई दिनों से काम-वन के इस मोड़ पर ही स्वामिनी क्यों रथ की गति धीमी करा देती हैं।

उसने प्रकट पूछा—देवि, क्या रथ को काम-वन की ओर मोड़ दूँ ?

"आदेश की प्रतीक्षा करो, मातंग। उतावले न हो"। भृकुटियों में कुछ बल डाल वारांगना ने कुछ गम्भीर स्वर में कहा।

संयत सूत ने मस्तक नीचा कर लिया।

कुछ क्षणों के पश्चात् वारवनिता ने पुनः कहा—मातंग !

मातंग ग्रीवा मोड़ता हुआ, तुरगों को कठिनता से संयत करता हुआ बोला—देवि।

"वह जो सामने पावा-पथ इस राजमार्ग को काटता है, उसका एक छोर पूर्व-तोरण से होता हुआ काम-वन के पार्श्व से होकर जाता है, वहीं दाहिनी ओर काम-वन के मुखालिन्द तोरण का विशाल गज है। उसके समीप के चतुष्कों में मध्य चतुष्क के सम्मुख रथ की गति और धीमी कर देना।" स्वर की प्रकृत सरसता लौट आई थी। सारथी आश्वस्त हो गया।

"देवी की जैसी आज्ञा"। मातंग ने उन्मुख मस्तक नीचा कर लिया। तुरग की रज्जुएँ उसने कुछ ढीली कर दीं। अश्व पुनः तीव्र हो चले।

"नहीं नहीं, मातंग, गति वनी रहने दो—वही, पूर्ववत्"।

रथ की गति पूर्ववत् धीमी हो गई।

रथों और कर्णीरथों का संघट्ट और अविरल जन-संपात पावा-पथ की ओर फिर जाता था। जब कामसेना का रथ पूर्व तोरण से होकर काम-वन के दक्षिण पार्श्व में फिरा, मार्ग निर्जन सा मिला। समीप ही काम-वन के मुखालिंद तोरण का विशाल गज अपना प्रलम्ब भुजंग-सरीखा शुंड उठाए खड़ा था। मध्य चतुष्क के समीप कई अश्वारोही मार्ग के मध्य में ही खड़े थे। एकाध आरोही पथ के इस पार से उस पार आ जा रहे थे। रथ के पहुँचते ही अश्वारोही पथ के दोनों ओर पंक्ति बाँध खड़े हो गए। उनके उन्नत मस्तक पर सुन्दर उष्णीष सोहते थे।

कुछ दूर से ही रथस्वामिनी ने देखा—चतुष्क में खड़ा एक विशालकाय युवक समीप के अश्व पर बैठ गया। सुन्दर सजीले युवक के उष्णीष पर सामने स्वर्ण-पत्तर जड़ा था जिसके ऊपर श्वेतपक्ष की कलँगी भिलमिल भिलमिल हिल रही थी। रथ के समीप आते ही अश्वारोही युवक पथ के अत्यन्त निकट खड़ा हो गया। इस ओर के अश्वारोही हटकर उसके पीछे खड़े हो गए। वे उसके अनुचर थे।

युवक ने अश्वरज्जु वामस्कन्ध में अटकाकर युगल करों से कामसेना का अभिवादन किया। उसकी मुद्रिकाओं के हीरक सन्ध्या की अरुणिमा में चमक उठे। शीर्ष के ईषत्कम्पन से वारवनिता ने उसका प्रत्यभिवादन किया।

फिर उसने कहा—मातंग, रथ रोक दो।

मातंग ने रास खींच ली, तुरग रुक गए। मातंग ने रज्जुओं को उनके अंकुश में अटका दिया, फिर वह लम्बी कशा ले दोनों हाथों में उसे पलटता हुआ खेलने-सा लगा। गणिका का सेवक होने के कारण उसके ग्राहकों की ओर देखने का उसे अभ्यास न था। सधे अश्व चुपचाप संकेत की प्रतीक्षा में खड़े रहे।

कामसेना ने युवक से पूछा—विदेशी हो, आरोही?

"विदेशी हूँ, देवि—दूर पंचाल का।"

विद्रुम-पंक्ति खुल गई। कुहनियों को उठा दोनों करों से बृहत् चूड़ा-ग्रन्थि की पुष्पमालिका को यथास्थान करती युवती ने हँस दिया—अकृत्रिम, सरल हास।

—

"सो तो स्पष्ट है, आरोही।"

"वह कैसे, देवि?" युवक ने चकित हो पूछा। उसके सारे अनुचर रथस्वामिनी के उत्तर से विस्मित हो उन्मुख हो उठे।

"वह कैसे?—तुम्हारी वेश-भूषा से। तुम्हारे ग्रीवा तक कटे केशों से, अंगद और कुंडलों की गढ़न से, अंजन के आधिक्य से, ताम्बूल के अभाव से और अब, शब्दों के उच्चारण से।" शब्दों के अनियंत्रित प्रवाह में शक्ति और आदेश की झंकार था। सुननेवाले मुग्ध हो गए। विदेशी उसकी ओर दत्तदृष्टि हो सुन रहे थे—मन्त्र मुग्ध, शप्त-से।

"वज्जी-नागरिक के लम्बे केश पृष्ठभाग पर खेलते हैं, विदेशी, और उनके वक्ष केवल पुष्प तथा तारहारों से सुशोभित रहते हैं—वैशाली में केवल नारियों के वक्ष ही अंशुक से प्रच्छन्न रहते हैं"। नारी फिर हँसी।

युवक झिझका। संक्रामक हास एक मुख से दूसरे पर खेलने लगा। केवल मातंग पूर्ववत् करों में कशा को पलटता रहा।

"मैं मालव हूँ, देवि—पंचाल का मालव, मालवगण के सेनापति का तनय—सुकंठ—" युवक बोलता-बोलता पार्श्व की ओर कुछ मुड़ गया—"और ये हैं मेरे सहचर-सुज्येष्ठ, मलय, कुन्तल, कंठक, नाग"—फिर सामने पथ के उस पार संकेत कर उसने वक्तव्य पूरा किया—"और वे, मेरे अनुयायी सामन्तपुत्र।"

युवती ने मानों और कुछ न सुना। अधिकार का जीवन बितानेवाली उस नारी के निमित्त ही जैसे सारा विश्व रचा

गया हो और वह स्वयं हो उस विश्व-हृदय का केन्द्र। उसने जैसे युवक के वक्तव्यका अधिक भाग सुना ही नहीं। रथ की पृष्ठ-पट्टिका की दूसरी ओर अपनी कुहनी रखती हुई उसने दक्षिण कर की मुट्ठी पर अपना कपोल धर दिया, फिर किंचित करवट-सी हो एक पाँव को दूसरे पर चढ़ा कुछ विचारती-सी वह अपने आप बोली—" 'सुकंठ', न, 'सुकंठ' नहीं, 'सुग्रीव'—मैं उसे 'सुग्रीव' कहती।"

फिर जैसे अपने को अपने प्रासाद के अन्तरालिन्द से दूर राजपथ पर रुकी जान वह कुछ चिहुँकी। उसने जैसे संज्ञा लाभ कर पूछा—मुझे जानते हो, युवक ?

"जानता हूँ, देवि। जान कर ही सुदूर पश्चिम से आया हूँ। नित्य इस रथ की प्रतीक्षा में यहाँ खड़ा होता हूँ—एक झलक के निमित्त। आज देवता प्रसन्न हुए और मेरे सौभाग्य का उदय हुआ। भला वैशाली की विश्वविख्यात कामसेना को कौन नहीं जानता !"

बात काटती हुई सी कामसेना ने सीधी बैठकर कहा—प्रगल्भ, शब्दशूर मालव, रहने दो व्याख्या। वैशाली में ध्वनि और संकेत का साम्राज्य है—यहाँ बाण और करवाल, शब्द और शक्ति अनावश्यक हैं, निरर्थक, निन्द्य।

इतने अश्वारोही थे, युवा, सशक्त, सम्पन्न, परन्तु यह युवती उनके भावों, उनकी कामनाओं से खेल रही थी—स्वयं गर्विता, प्रगल्भा, वाग्विलासिनी।

"अच्छा, आओ विदेशी, कामसेना के अतिथि बनो। रथ पर आओ।" उसने मुसकुराते हुए कहा।

मालव अश्व से उतर पड़ा। उस पार से धीरे धीरे आकर एक अनुचर ने उसके तुरंग की रज्जु पकड़ ली। केवल एक बार कामसेना ने मालव के अनुचरों और मित्रों की ओर दृष्टि उठाई।

उसने कहा—मालव को जब चाहो मेरे प्रासाद में पा सकते हो। वैशाली में श्रीमानों को शरीररक्षकों की आवश्यकता नहीं पड़ती। अथवा, चाहो तो मेरा प्रासाद तुम्हारे निमित्त प्रस्तुत है।

उसने मालव की ओर देखा। मालव ने रथ पर बैठते हुए कहा—धन्यवाद, देवि, इनका पंचाल-आवास में रहना आवश्यक है।

मातंग ने पहली बार मस्तक उठाया। रज्जु और कशा खींच कर उसने रथ घुमा लिया और वनायु-तुरग वारांगना के ग्रीष्म प्रासाद की ओर उड़ चले।

मालव स्तब्ध था, मुग्ध, संतुष्ट।

२

एक पक्ष बीत गया, दूसरा बीता, तीसरा भी। अमोघवर्ष राजुक को कामसेना के प्रासाद में प्रवेश न मिला।

अमोघवर्ष संवज्जि-संघ का राजुक था। सात सहस्र सात सौ सात राजाओं में उसकी गणना थी। संघ के अधिवेशनों में भी उसका पद विशिष्ट था। वह वज्जि-संघ का गणपूरक था। गणराज-

कुलों में से एक प्रशस्त कुल में सम्भूत अमोघवर्ष लिच्छवियों के कुलपुरुषों में अपनी वक्तृता और समृद्धि के कारण विख्यात था। राजुकों की भाँति उसे भी वैशाली की विख्यात पुष्करिणी में स्नान का अधिकार था और वह भी उसके जल से पदप्राप्ति के अवसर पर अभिषिक्त हुआ था। उसे आश्चर्य था—वारांगना, जो उसके सहवास से अपना सम्मान मानती थी, अब अपने द्वार उसके प्रति क्यों आवृत रखती है। सप्ताहों नित्य वह कामसेना के प्रासाद को आता और द्वारपाल से प्रेयसी के सम्बन्ध में पूछता, परन्तु सदा उसे विपरीत उत्तर मिलता।

एक दिवस जब अमोघवर्ष ने भीतर जाना चाहा द्वारपाल ने विनीत भाव से निवेदन किया—स्वामिनी नहीं हैं।

यह कोई नवीन बात न थी। ऐसे अवसरों पर, वह प्रवेश करता, कामसेना की प्रतीक्षा करता और प्रतीक्षा का सारा समय वह उसके पक्षियों को चारा देने, उसके अपूर्ण चित्रों को पूरा करने, उसके प्रसाद के निमित्त प्रमदवन में दोला बाँधने में व्यस्त रहकर व्यतीत करता।

सो उसे कुछ आश्चर्य हुआ—द्वारपाल का यह कर्तव्य नहीं था कि वह वज्जिराज्य के राजुक से इस प्रकार कुछ कहे। गृहस्वामिनी की अनुपस्थिति की बात वह उसकी अनुचरी द्वारा सुनता। उसने कहा...'अच्छा'। और वह सोपान मार्ग की ओर बढ़ा। परन्तु बलिष्ठ द्वारपाल का रजतदंड बीच मार्ग की ओर बढ़ गया।

अमोघवर्ष के रोम रोम में आग सी लग गई।

उसने सस्वर पुकारा—पन्थक !

द्वारपाल ने शिर झुका लिया। फिर धीरे से कहा—श्रीमन्, पन्थक आज्ञाकारी सेवक है।

अमोघवर्ष समझ गया।

वह बोला—पन्थक, तुम निरपराध हो। परन्तु मेरा आना और इस प्रकार लौट जाना अपनी व्यस्त स्वामिनी से कहोगे।

द्वारपाल ने मस्तक झुकाकर अभिवादन किया। अमोघवर्ष चला गया। जाते जाते उसने सोचा—जान पड़ता है जनता की बात नितान्त निर्मूल नहीं।

वह संघ-राज्य के वैदेशिक-विभाग की ओर चला।

वैदेशिक-विभाग के प्रमुख-लेखक के समीप पहुँच उसने पूछा—क्या पिछले सप्ताह राज्य-प्रवेश-पुस्तक में कुछ मालवों के नाम चढ़े हैं ?

प्रमुख-लेखक ने पुस्तक खोलकर पढ़ा—"पंचाल के मालव—मालवगण के सेनापति का तनय सुकंठ—विशिष्ट अतिथि, उसके सहचर, सुज्येष्ठ, मलय, कुन्तल, कंठक, नाग—साधारण अतिथि, और उसके अनुयायी सामन्त-पुत्र, बन्धुवर्मा, अनुवीर शीतल, दिलीप, कीचक—अनुचर अतिथि, संख्या=ग्यारह। प्रयोजन—देशपर्यटन। स्थान—पश्चिम द्वार का अतिथि-भवन।"

नीचे, एक एक नाम के सामने व्यक्ति के शरीर का वर्ण, विशेष चिह्न, वय आदि उल्लिखित थे।

और नीचे, मालव सुकंठ के प्रति एक टिप्पणी थी।

यहाँ तक पहुँचते पहुँचते प्रमुख लेखक रुक गया। अमोघ वर्ष ने जाना अभी कुछ और है जो वह नहीं बताना चाहता।

उसने कहा—और पढ़ो।

प्रमुख-लेखक बोला—श्रीमन्, आगे विशिष्ट अतिथि के वर्तमान अवकाश और कार्य का उल्लेख है।

राजुक ने लेखक की चुप्पी का अर्थ समझा। वह स्वयं कुछ झिझका, फिर धीमे स्वर में बोला—पढ़ो।

प्रमुख-लेखक ने दोनों कर जोड़ दिए।

अमोघवर्ष ने फिर कहा—कुछ अधिकार के साथ—पढ़ो. अनीक, आगे क्या है?

प्रमुख-लेखक बोला—श्रीमान् वज्जि-संघ के व्यवहार-विधान से अपरिचित नहीं हैं—"विदेशी के कार्य-क्रम का ज्ञान राजा, उपराजा और प्रमुख-लेखक के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं होगा।"

अमोघवर्ष ने ललाट का स्वेद पोंछ लिया। रक्त चन्दन के संसर्ग से उसके श्वेत ललाट का अरुण राग और भी गहरा हो गया।

उसने कुछ सबल शब्दों में कहा—प्रमुख-लेखक, तुम्हारी टेक वज्जिसंघ के गणपूरक राजुक अमोघवर्ष के सम्मुख उचित नहीं।

"परन्तु, श्रीमन्, अनीक उसी वज्जि-संघ का भेद-रक्षक प्रमुख-लेखक है, उसके गुप्त संवादों की सुरक्षा का उत्तरदायी।

राजा और उपराजा के अतिरिक्त वह और किसी को आगे उल्लेख नहीं पता सकता। श्रीमन्, विनीत सेवक संघ के विधान से आबद्ध है। क्षमा करें।"

"अनीक, तुम्हारा एक परिवार है और उसमें शिशुओं का अभाव नहीं।"

"प्रमुख-लेखक व्यावहारिक, पदसम्बन्धी कार्यों के परिणाम का सोच नहीं करता, श्रीमन्! और उसके परिवार और शिशुओं की रक्षा और पालन का उत्तरदायित्व संघ पर है, वज्जि-संघ के राजुकों पर।" प्रमुख-लेखक मुसकुराया।

राजुक कुछ सहमा। साम और दंड के सकेत व्यर्थ गए, विभेद का प्रयोग लगता नहीं था, रह गई दानविधि। अमोघ-वर्ष ने उसके प्रयोग का निश्चय किया। स्वर्ण की झंकार मधुर होती है, उसका दर्शन प्रिय—उसने विचारा।

अमोघवर्ष की कटिबद्ध नकुली में निष्कों की झंकृति हुई। उसने प्रमुख-लेखक पर अपनी दृष्टि डाली। उसकी दृष्टि अनीक की कठोर दृष्टि से मिली और लौट आई। राजुक का साहस छूट चला।

उसने एक बार और प्रयास करना उचित समझा। कहा—अनीक, अमोघवर्ष नकुली में कार्षापण नहीं बाँधता और सारी वैशाली जानती है कि उसके निमित्त कामसेना का अघट कोष सदा खुला रहता है।

प्रमुख-लेखक जो क्रोध से कुछ असंयत हो चला था, अमोघ-

वर्ष के वक्तव्य के उत्तरार्ध से कुछ मुसकुरा पड़ा। उसके हास में व्यंग्य छिपा था। परन्तु, अमोघवर्ष ने उसके व्यंग्य का अभिप्राय नहीं समझा।

अविचलित अनीक अपनी चेष्टा कठोर बना गम्भीर स्वर में बोला—संवज्जि-संघ के गणपूरक श्रीमान् राजुक अमोघवर्ष को वज्जि-राज्य के प्रमुख-लेखक को कर्त्तव्यच्युत करने का दंड विदित है। प्रमुख-लेखक आशा करता है कि ऐसी दशा में श्रीमान् उसे अपने विशेष अधिकार के प्रयोगार्थ दंडधरों को आदेश करने पर बाध्य न करेंगे।

प्रमुख-लेखक की वाणी क्रोध और शक्ति से कंपित हो रही थी। इधर राजुक के नेत्रों से भी ग्लानि और क्षोभ की चिनगारियाँ निकल रही थीं। आवेग को रोकता हुआ वह चुपचाप अपना क्रोध पीकर विशाल शासन-भवन से वेगपूर्वक बहिर्गत हो गया।

× × ×

परन्तु अमोघवर्ष को शान्ति नहीं थी। वह उसी क्षण उपराजा के समीप जा पहुँचा। उपराजा व्यस्त था, परन्तु राजुक अमोघवर्ष को आया सुन वह शीघ्र मंत्रणा-कक्ष में आ गया। अमोघवर्ष ने अभिवादन कर कहा—श्रीमन्, मैं पंचाल-मालव के सम्बन्ध में कुछ जानना चाहता हूँ।

उपराजा ने अमोघवर्ष की उद्विग्न मुद्रा देखी, उसे कुछ आश्चर्य हुआ। अमोघवर्ष सदा संयत, हँसोड़ रहता था। आज की उसकी चेष्टा असाधारण थी।

"आज इस प्रकार उद्वेग कैसा ?" उसने हँसकर अमोघ वर्ष से पूछा और उसको पास के भद्रपीठ पर बैठने क संकेत किया।

"श्रीमन्, मैं पंचाल-मालव के सम्बन्ध में कुछ जानन चाहता हूँ।" अमोघवर्ष ने उपराजा के आसन ग्रहण करने के उपरान्त बैठते हुए अपनी बात दुहराई।

उपराजा ने फिर मुसकुरा दिया, पर शीघ्र उसका मुख-मंडल कुछ गंभीर हो उठा।

उसने कहा—अवश्य पूछो, अमोघवर्ष। परन्तु मेरी समझ में उसके अर्थ तुम्हारा वैदेशिक-विभाग के प्रमुख-लेखक के निकट जाना अधिक उचित होता।

"परन्तु मैं वहाँ जा चुका हूँ, श्रीमन्। मैं वहीं से आ रहा हूँ। वहाँ मेरी जिज्ञासा सफल नहीं हुई इस कारण श्रीमान् के निकट आना पड़ा।" व्यग्र राजुक अपने प्रश्न के अनौचित्य पर स्वयं आकुल हो उठा।

"फिर पूछो, अमोघवर्ष, क्या है तुम्हारी वह जिज्ञासा ?" उपराजा अपने सहज गम्भीर मुख पर फिर हास लाने की चेष्टा करता हुआ बोला।

"मैं पंचाल-मालव के अवकाश का प्रयोजन जानने की इच्छा करता हूँ, श्रीमन्।" अमोघवर्ष धीरे से बोला।

"पंचाल-मालव का अवकाश-ग्रहण उसके व्यक्तिगत प्रयोजन से संपर्क रखता है, अमोघवर्ष, और तुम जानते हो कि

वज्जि अथवा विदेशी नागरिकों के व्यक्तिगत कार्यों में संघ किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता।"

"परन्तु यदि विदेशी किसी अहितकर प्रयत्न में कार्यशील हो तो?" अमोघवर्ष ने वेग से पूछा।

"इस प्रकार के अहितकर कार्यों के संबन्ध में संघ के चर सदा संलग्न रहते हैं, अमोघवर्ष। संघ संतुष्ट होकर ही इस प्रकार के अवकाश विदेशियों को प्रदान करता है। तुम्हारा केवल इतना ही जान लेना पर्याप्त होगा कि संघ उस संबन्ध में संतुष्ट है।"

"तो क्या किसी प्रकार मैं यह नहीं जान सकता कि पंचाल-मालक कहाँ है?" अमोघवर्ष ने पूछा।

"किसी प्रकार नहीं। केवल एक ही व्यवस्था है जिससे यह संभव हो सकता था परन्तु वह तुम्हारे सम्बन्ध में अप्रासंगिक है।"

"वह कौनसी, श्रीमन्?" अमोघवर्ष के [illegible]।

"वह यह कि यदि तुम्हारा उसके द्वारा व्यक्तिगत अपकार हुआ हो तो तुम उसका अवकाश-प्रयोजन जान सकते हो, परन्तु उस दशा में अपने अपकार के निराकरण के अर्थ तुम्हें 'विनिश्चय महामात्रों' के सम्मुख निवेदन करना होगा।" गम्भीर उपराजा ने शक्तिपूर्वक कहा।

"अपकार-जनित भावना से प्रेरित होकर ही अमोघवर्ष वज्जि-संघ के उपराजा के निकट उपस्थित हुआ है, श्रीमन्।"

कुछ संतोष की झलक-सी राजुक के मुख पर दिखाई पड़ी।

"तो जानोगे, नागरिक, सुनो—पञ्चाल-मालव सुकंठ ! अवकाश का प्रयोजन है प्रणय का व्यसन, एक सम्भ्रान्त नागरिक का आतिथ्य और उसका वर्त्तमान आश्रय है—वारांगना कामसेन के ग्रीष्म-प्रासाद का तृतीय प्रकोष्ठ।" आसन से उठते हुए उपराजा ने कहा।

जाते हुए अमोघवर्ष को रोकते हुए उपराजा ने उसे सावधान किया—नागरिक, निर्दोष विदेशी को अकारण क्लेश देना संघ की दृष्टि में अशान्ति का परिचायक है, और अशान्ति का दंड, तुम जानते हो, भयंकर है।"

अमोघवर्ष कुछ व्यथित-सा परन्तु शक्तिपूर्वक बोला—"श्रीमन्, संवज्जि-संघ का गणपूरक एवं राजुक नागरिक अमोघवर्ष अपना उत्तरदायित्व समझता है, धन्यवाद।"

"मिथ्या, नितान्त मिथ्या !"—अभी अमोघवर्ष की बात समाप्त भी न होने पाई थी कि मंत्रणा-कक्ष के पार्श्व का निभृत द्वार सहसा खुला और वज्जिसंघ के प्रमुख-लेखक ने प्रवेश किया। उसके शब्दों से यकायक उपराजा चकित हो गया और अमोघवर्ष संत्रस्त।

प्रमुख-लेखक ने फिर कहा—मिथ्या ! नितान्त मिथ्या ! संवज्जि-संघ का गणपूरक एवं राजुक नागरिक अमोघवर्ष अपना उत्तरदायित्व नहीं समझता और संवज्जि-संघ के प्रमुख-लेखक के अधिकार से मैं उसे संघ के कर्मचारियों को अनुचित रीति से कर्तव्यच्युत करने का दोषी घोषित करता हूँ।

'यह अपराध जघन्य है, प्रमुख लेखक। इसका दंड शूला है।" कठोर आकृति धारण कर प्रशान्त मुद्रा से उपराजा बोला।

"श्रीमन्, प्रबल-प्रतापी संवज्जि-संघ के अद्भुत कार्यक्षम उपराजा के नीचे युगान्त तक कार्य करनेवाला लेखक इस जघन्य अपराध के दंड से अवगत न हो, यह आश्चर्य की बात होगी।" प्रमुख-लेखक ने दृढ़तापूर्वक कहा।

उपराजा निभृत द्वार से गुप्तकक्ष की ओर बढ़ता हुआ अमोघ-वर्ष के प्रति बोला—नागरिक, मेरी प्रतिज्ञा करोगे।

विद्युत्हत अमोघवर्ष अवसन्न हो गया था। उसने मस्तक झुका लिया। प्रमुख-लेखक ने उपराजा का अनुसरण किया।

× × × ×

कुछ क्षणों के उपरान्त उपराजा लौटा, अकेला, गम्भीर। अमोघवर्ष का मस्तक फिर झुक गया।

उपराजा ने प्रवेश करते ही कहा—नागरिक, तुम्हारा अप-राध सुना। उचित तो यह था कि इसी समय नागरिकता के अधिकारों से तुम्हें वंचित कर तुम्हारे जघन्य अपराध की सत्यता अप्रमाणित होने तक कारावास में डलवा देता, परन्तु संघ के प्रति तुम्हारी की गई सेवाओं का मूल्य बड़ा है। अतः मैं स्वयं तुम्हारा प्रतिभू होता हूँ और इस विदेशी के प्रति तुम्हारे व्यवहारकार्य के अन्त तक तुमको मुक्त रखता हूँ। फिर तुम्हारा विचार संघ के अधिवेशन में होगा। जाओ।

अमोघ वर्ष का मस्तक और नत हो गया। उपराजा उसे वहीं छोड़ निभृत-द्वार से गुप्त-कक्ष में पुनः प्रविष्ट हुआ।

○

"तुम्हीं बोलो, कामसेने, अब मैं केवल सुनूँगा।"

"पर, क्यों? वह जो तुम्हारा मालव वाग्विलास है उससे क्या छुट्टी ले लोगे? बोलो तो, मालव, बोलो।"

"बोलूँ? क्या बोलूँ?"

"अरे वही,—रावी का ऊर्मिविलास, सिन्धु का गर्जन, वितस्ता का निःश्वास, चन्द्रभागा का भ्रूकुटि-भंग, परुष्णी का वैभव, शुतुद्रु का गौरव, गाओ न!"

"हाँ चलो, चलो कामसेने, चलो उस दूर देश को। उस पञ्चाल-मालव को चलें। आओ, उन क्षुद्रक-यौधेयों के शूर देश को चलें। यमुना को लाँघ कर, मथुरा के विलासी शौरसेनों को पीछे छोड़ चलें—वहाँ, जहाँ क्षुद्रक-यौधेय और मालवों का संघट्ट अंधक-वृष्णियों से लोहा लेता है और जहाँ अरट्ट मध्यस्थ हो दोनों पक्षों के आघात सहते हैं। वहाँ चलो, सुमुग्धि, वहाँ..."

कामसेना विमुग्ध मालव का वाग्विन्यास सुनती रही। आनन्द से उसके होंठ फड़कने लगते, रोएँ खड़े हो जाते। वह मालव को प्रगल्भ कहती थी। कुतूहलवश वह उसकी अभिलाषा सुनती रही।

"जहाँ शुतुद्रु तुम्हारी प्रतीक्षा में करवटें बदलता है, जहाँ वितस्ता तुम्हारे भय से उमड़ उमड़ रोती है, जहाँ चन्द्रभागा शुतुद्रु से मान किए बैठी है, जहाँ सिन्धु शुतुद्रु को ललकारता है, तुम्हारे निमित्त, इन कुंचित अलकों के निमित्त।" मालव ने कामसेना की अलकों को उछाल दिया।

"अरे, तुम रुक गए मालव? बोलो, हाँ, चलने दो वह वाग्धारा—फिर क्या होगा?"

मालव कामसेना के व्यंग्य से कुछ झेंप गया। उसे स्मरण हो आया कि वह उसे प्रगल्भ कहती है और वह अभी अभी बहुत कुछ कह चुका। कामसेना उसकी ओर अब भी वैसे ही देख रही थी जैसे बालिका अपने खिलौने को देखती है।

"कब क्या होगा?" मालव ने पूछा।

"वही, मैं पूछती हूँ-क्या होगा तब, जब शुतुद्रु और सिन्धु में मेरे लिए युद्ध ठन जाएगा? तब क्या सिन्धु मुझे उदरस्थ कर लेगा? अथवा मैं शुतुद्रु की लहरियों पर खेलूँगी?"

"अरे, नहीं, नहीं, कामसेने, सिन्धु कैसे तुम्हें उदरस्थ कर लेगा? अथवा शुतुद्रु ही तुम्हें अपनी लहरियों पर क्योंकर उछालेगा? और मैं क्यों उछालने दूँगा? जब सिन्धु और शुतुद्रु दोनों में युद्ध ठन जाएगा, मैं अपनी बाहुओं की दोला बना तुम्हें उन पर झुलाऊँगा—इस प्रकार।" हँसते हुए मालव ने कामसेना को झट अपनी भुजाओं पर उठा लिया और वह लगा उसे दोला की भाँति झुलाने।

"इस प्रकार, इस प्रकार " मालव कहने लगा फिर वह लगा प्रकोष्ठ-पृष्ठ पर नाचने।

कामसेना जोर से हँस पड़ी। आकाश में सुदर्शन चन्द्र पूर्ण बिम्ब से मालव का यह कौतुक देख रहा था। प्रकोष्ठ के पृष्ठ-तल पर सुरम्य कौमुदी छिटक रही थी। कामसेना के अंग अंग में गुदगुदी उठ रही थी। मालव की विशाल भुजाओं से धर्षित गणिका सुकंठ की शक्ति की तुलना अमोघवर्ष की ललित-कला-व्यंजक भावनाओं से करने लगी। दोनों में असाधारण वैषम्य था—एक में थी कामजनित तृप्ति, दूसरे में संतोष जनित पीड़ा।

५

जब मालव को वज्जिराज्य के कर्मचारी ने 'विनिश्चय-महामात्रों' का लिखित आज्ञापत्र दिया, सुकंठ कुछ घबरा उठा। आज्ञापत्र में उसको कामसेना के साथ न्यायालय में उपस्थित होने का आदेश था। नागरिक अमोघवर्ष ने मालव के विरुद्ध उसकी प्रेयसी बलपूर्वक छीन लेने का अभियोग उपस्थित किया था। अमोघवर्ष को अपना अभियोग मालव के विरुद्ध प्रमाणित करना था और मालव को अपने को निरपराध सिद्ध करना था।

कामसेना ने मालव से कहा—सुग्रीव, तुम वज्जियों के नियम-व्यवहार नहीं जानते इसी कारण घबराते हो, उस अभियोग में कुछ भी नहीं रखा है।

मालव सर्वथा आश्वस्त था। केवल कभी कभी उसे भय होता, कहीं कामसेना उसके हाथ से न निकल जाय। उसके सहचर अवश्य उसके अर्थ चिन्तित थे।

× × × ×

प्राड्विवाक ने अमोघवर्ष का पक्ष स्वीकार करने में आपत्ति की। उसने कहा—"जब तक कामसेना तुम्हारी ओर से वक्तव्य नहीं करती और मालव को अपने प्रासाद में रखती है, इस बात को स्वीकार करना कठिन है कि मालव ने उसकी अनिच्छा से उसे शक्तिपूर्वक ले लिया है।" उसने मालव और कामसेना की ओर से न्यायालय में उपस्थित होने की स्वीकृति दे दी।

× × × ×

'विनिश्चय-महामात्र' अभियोग स्वीकार न कर सके। कामसेना ने स्वेच्छा से मालव को ग्रहण करना स्वीकार किया। उसने यह भी कहा कि वह अपना अधम व्यापार त्याग मालव का चिरसख्य ग्रहण करेगी, वज्जिराज्य छोड़ पंचाल-मालवों में जा बसेगी।

'विनिश्चय-महामात्रों' ने मालव और कामसेना को अपनी रुचि के अनुसार कार्य करने की अनुमति दे दी। साथ ही उन्होंने विदेशी नागरिक और वज्जि नागरिका पर अकारण दोषारोपण करने का अमोघवर्ष पर अभियोग लगाया। अमोघवर्ष ने वज्जि-संघ के अधिवेशन तक अभियोग को स्थगित रखने

की अनुमति माँगी। वज्जिसंघ की विशिष्ट नागरिक होने से राजुक को वह अनुमति मिल गई।

× × × ×

कामसेना के पंचाल जाने की बात सुन वज्जियों में कुहराम मच गया। कामसेना उनके विलास का उपकरण थी, व्यसन की विभूति, उनके रूप-गौरव की मर्यादा। विदेह नागरिकों का इस विषय में लिच्छवि नागरिकों से सर्वथा एकमत था। राजुक-सामन्त सभी इस बात को सुनकर व्यथित हो उठे। 'विनिश्चय-महामात्रों' के विरुद्ध एक आन्दोलन-सा खड़ा हो गया। उसे अमोघवर्ष ने और भड़का दिया। क्रान्ति-सी मच चली।

६

आज वैशाली में विशेष समारोह है। संवज्जि-संघ का आज ग्रीष्मान्त अधिवेशन है। इस अधिवेशन का कार्यक्रम दीर्घ है और संघ को बड़े महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करना है। पावा के मल्लों पर कोसल के राजा प्रसेनजित ने आक्रमण किया है, मल्लों का दूत आया है। मगधराज की वैशाली पर आक्रमण की तैयारियों का पता चला है। राजुक अमोघवर्ष के मालव पर किए अभियोग की 'ज्ञप्ति' है। स्वयं राजुक अमोघवर्ष पर उपराजा का संघ की ओर से अभियोग है।

× × × ×

घंटों का शब्द सारे नगर को शब्दायमान करने लगा।

यह संघ के राजुकों को संघ-भवन में एकत्र होने की सूचना थी। पूर्वाह्न के अन्त तक संघ-भवन राजुकों से भर गया और बाहर का सुविस्तृत मैदान वैशाली के नागरिकों से।

भवन के भीतर 'आसन-प्रज्ञापक' ने भद्रपीठों की परीक्षा की, फिर 'गणपूरक' ने राजुकों को एकत्र कर बैठाया। संघ का कार्य प्रारम्भ हुआ।

राजा ने उठकर अपने दक्षिण ओर के आसन पर बैठे मल्लों के दूत की ओर संकेत कर कहा—ये मल्ल-संघ के दूत हैं। इनके द्वारा मल्ल-संघ का यह पत्र आया है।

राजा ने अपने हाथ का पत्र पढ़ा—"वज्जि-संघ को मालव-संघ की स्वस्ति। कोसल ने मल्ल-भूमि पर आक्रमण किया है। ऐसे अवसर पर मल्ल-संघ ने गणतन्त्रों की स्वत्व-रक्षा के लिए युद्ध ठान दिया है। साम्राज्य जिस प्रकार नागरिकता को नष्ट कर व्यक्तिगत स्वातंत्र्य का विध्वंस करते हैं वह वज्जि-संघ को पूर्णतया विदित है। वास्तव में यह मल्ल-कोसल युद्ध नागरिकता और साम्राज्य का युद्ध है, स्वतन्त्रता और शक्ति का। साम्राज्य की प्रान्त-लोलुपता एवं प्रसर-लिप्सा वज्जि-संघ से छिपी नहीं है। यदि उसके विरुद्ध प्रयत्न न किया गया तो शीघ्र नागरिक जीवन का अन्त हो जायगा और इसका उत्तरदायित्व वज्जि-संघ पर भी कुछ कम न होगा। वज्जि-संघ से, वैशाली के एक लक्ष अड़सठ सहस्र नागरिकों से हमारी यह प्रार्थना है कि वह इस आपत्ति में हमारी सहायता करे। इसके साथ मल्ल-संघ भी घोषित करता है

कि इस सहायता के बदले वज्जि संघ जब जिस प्रकार की सहायता चाहेगा वह देगा। शुभमस्तु।"

राजा बैठ गया। भवन के राजुकों में खलबली मच गई।

एक राजुक ने उठकर पूछा—क्या संघ की ओर से इसके उत्तर में कोई 'ज्ञप्ति' है?

राजा ने उठकर कहा—'हाँ।' फिर उसने उपराजा को 'ज्ञप्ति' और 'प्रतिज्ञा' प्रस्तुत करने का संकेत किया।

उपराजा ने उठकर कहा—सम्मानित संघ मेरी प्रार्थना सुने यदि संघ इसके निमित्त उपयुक्त काल समझे तो सुने। यह 'ज्ञप्ति' है

उपराजा चुप हो रहा। संघ मूक था।

उपराजा ने पुनः कहा—संघ मूक है, सो मैं समझता हूँ मेरी 'ज्ञप्ति' स्वीकृत हुई। सम्मानित संघ मेरी 'कम्मंवाचा' सुने। यह मेरी 'प्रतिज्ञा' है—"मल्ल-संघ का पत्र वज्जि-संघ ने पढ़ा। वह मल्ल-संघ का प्रस्ताव स्वीकार करता है। साथ ही विचक्षण राजुक महत्तक को विशिष्ट दूत बना उसके द्वारा मल्ल-संघ को यह प्रार्थना भेजता है कि वह वज्जि-संघ के साथ मिलकर एकप्रबल मल्ल-वज्जिगण-तन्त्र स्थापित करे। इस गण में दोनों संघों के नौ नौ प्रतिनिधि हों। दोनों कोसल और मगध के प्रसर एवं आक्रमण का सामना करें। वज्जि-सेनापति वैशाली के तीनों प्राकार-वेष्ठनों पर शतघ्नियों को चढ़ाकर मूल की रक्षा का प्रबन्ध करे और वज्जियों की आधी सेना लेकर पावा की ओर कोसलों के विरुद्ध प्रस्थान करे। यह लिखकर मल्ल-संघ को प्रेषित किया

जाय।" जो राजुक इस प्रतिज्ञा के विरोध में हो वह बोले, जो पक्ष में हो वह मूक रहे।

संघ मूक रहा।

उपराजा ने फिर 'प्रतिज्ञा' पढ़ी। संघ फिर चुप रहा। तृतीय बार पढ़ने के उपरान्त उपराजा ने कहा—तीन बार मैंने 'प्रतिज्ञा' पढ़ी, तीन बार संघ चुप रहा। मैं समझता हूँ संघ ने इसे स्वीकृत किया। संघ फिर चुप रहा।

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

राजुक अमोघवर्ष ने 'ज्ञप्ति' की। वह स्वीकृत हुई। उसने अपनी प्रतिज्ञा रखी—"सम्मानित संघ मेरी 'कम्मवाचा' सुने। यह मेरी 'प्रतिज्ञा' है—एक विदेशी सुकंठ नामक मालव ने एक वज्जि-नागरिक से उसकी प्रेयसी छीन ली है। संघ उसका विचार करे।" जो विरोध में हो बोले जो पक्ष में हो चुप रहे।

राजा ने आपत्ति में पूछा—क्या इस विषय पर 'विनिश्चय-महामात्रों' का निर्णय नहीं हो चुका है?

प्रस्तावक बोला—हो चुका है। 'पवेनि-पुत्थकों' में उसका उल्लेख भी हो चुका है।

"तब संघ इस प्रश्न पर विचार नहीं कर सकता। यदि अभियुक्त उस निर्णय से संतुष्ट नहीं तो वह 'व्यवहारिकों' के निकट प्रार्थना करे। वहाँ से वह 'सूत्रधारों' अथवा वहाँ से भी 'अष्टकुलकों' के निकट निवेदन कर सकता है। संघ में यह 'कम्मवाचा' अव्यवस्थित है।" राजा ने कहा।

"परन्तु क्या 'राजुक' के सम्बन्ध में भी संघ का यही निर्णय होगा ?" अमोघवर्ष ने पूछा।

"निस्सन्देह, क्योंकि वज्जि-संघ व्यवहार के अधिकारों में 'नागरिक' और 'राजुक' में भेद नहीं करता।" राजा ने शांति-पूर्वक कहा।

संघ चुप था। राजुक अमोघवर्ष की 'प्रतिज्ञा' गिर गई।

उपराजा ने उठकर 'ज्ञप्ति' की। संघ ने उसे स्वीकार किया। उसने 'प्रतिज्ञा' प्रस्तुत की—सम्मानित संघ मेरी 'प्रतिज्ञा' सुने। यह मेरी प्रतिज्ञा है—"वैशाली के राजुक गणपूरक अमोघवर्ष ने संवज्जि-संघ के प्रमुख-लेखक को स्नेह, धमकी और ज्ञानविधि से कर्तव्यच्युत करने का प्रयत्न किया। संघ उस पर विचार करे।" जो विरोध में हो बोले, जो पक्ष में हो चुप रहें।

राजुक अमोघवर्ष ने संकेत किया। कई राजुक उठे।

एक ने विरोध करते हुए 'प्रतिज्ञा' की कि यह कार्य एक उप-समिति को सौंपा जाय। राजा और उपराजा ने इस पर आपत्ति की। मत लेने की आवश्यकता पड़ी। अमोघवर्ष के एक दूसरे मित्र ने प्रस्ताव किया कि मुख्य प्रतिज्ञा संघ के उपराजा की है, अतः सम्भव है कुछ राजुक भय से उसका साथ दे दें। न्यायपूर्ण निर्णय के अर्थ 'छन्द' शलाकाओं से लिये जाएँ। तब गुप्त 'छन्द' के अर्थ उसी राजुक ने प्रस्ताव किया कि राजुक अनंग 'शलाका-ग्राहक' नियुक्त हों। राजुक अनंग 'शलाका-ग्राहक' हुए। 'छन्द' लिए जाने पर उपसमिति के पक्ष में बहुमति सिद्ध हुई। संघ ने

उपसमिति का निर्माण कर राजुक अमोघवर्ष के अभियोग का विचार-कार्य उसे दे दिया।

वज्जि-संघ का दूत मल्ल-संघ को चला।

७

कामसेना के आचरण ने वैशाली में उथल-पुथल मचा दी थी। राजुक अमोघवर्ष पर लगाये गए अभियोग ने अग्नि में घी डाल दिया। उसने स्वयं उसे हवा दे देकर भड़काया।

× × × ×

इधर एक विचित्र घटना घटी। पंचाल मालव की ओर जाते हुए सुकंठ और कामसेना को मल्लों के विशाल पावा पथ पर अमोघवर्ष ने दुर्द्धर्ष आटविकों की सहायता से लूट लिया। कामसेना की रक्षा में उद्यत मालव मारा गया। कामसेना ने उसी समय आत्महत्या कर ली। लूट के रत्न और धन की प्राप्ति के पथ में अमोघवर्ष को कंटक जान आटविकों ने उसे भी मार डाला।

वैशाली में कुहराम मच गया। चारों ओर समाचार फैल गया कि मल्लों ने पावा पथ पर मालव, कामसेना और अमोघवर्ष को मारकर उनका धन लूट लिया है। कहाँ से यह संवाद उठा यह किसी को ज्ञात नहीं, परन्तु किसी अनजाने आधार से उठ उठ कर संवाद वैशाली के कोने कोने में गूँज उठते और वज्जि-संघ का वातावरण, क्षोभ और क्रोध, ईर्ष्या और हिंसा की अग्नि से जल उठता।

यह समय वज्जि-संघ के बड़े संकट का था। संघ के अधि-

वेशानों में नित्य वादविवाद चलते, नित्य द्राह और झगड़ों की नौबत आती। संघ की दुर्भेद्य दीवारें टूट-सी गईं, स्वार्थ गोपनीय भेद खुल पड़े। राजुक राजुक का शत्रु हो गया। वज्जि-संघ में किसी ने प्रस्ताव किया कि मल्लों ने ही अमोघवर्ष और काम-सेना जैसे वज्जि नागरिकों को और मालव सरीखे अतिथियों को मारा है अतः उन पर वज्जि-संघ आक्रमण करे। 'प्रतिज्ञा' बहुमति से स्वीकृत हो गई। सेनापति को मल्लों पर आक्रमण करने की आज्ञा मिल गई। मल्ल-वज्जि-गण नष्ट-भ्रष्ट हो गया।

× × × ×

युद्ध ठन गया। विचित्र युद्ध—तीन मोरचों वाला। इसी समय अजातशत्रु ने वैशाली पर आक्रमण किया जो एक मोरचा गंगा के उस पार गंगा-शोण के संगम पर था दूसरा मल्लों से पश्चिम की ओर चल रहा था। उधर मल्लों पर भी गहरा संकट था। पूर्व की ओर से लिच्छवि-विदेहों का आक्रमण था, दूसरी ओर कोसल की चोट। दोनों संघ-राज्य छिन्न-भिन्न हो रहे थे। दोनों साम्राज्य सोल्लास चोटें कर रहे थे।

× × ×

वज्जि-संघ के मागध मोरचे पर संघ का वयोवृद्ध सेनापति से गंगा के उस पार डेरा डाले पड़ा था। दिन-रात युद्ध का ताँता लगा रहता। दोनों ओर के चर बराबर शत्रु-पक्ष में भेद डालते, समाचार जानने के निमित्त छिप छिप कर चक्कर काटा करते।

× × ×

सन्ध्या का समय था। पश्चिम आकाश रक्त उगल रहा था। गंगा-शोण-संगम पर प्रलयंकर समर का वेग संध्या के कारण अभी अभी थमा था। वज्जि-संघ के सेनापति का शिविर सामन्तों से भर रहा था। इसी समय एक घायल मागध दौड़ता हुआ आकर सेनापति के चरणों में गिर पड़ा। बाणों से उसका तन छिद गया था।

वह मागध नहीं था।

उसने स्वयं कहा—श्रीमन्, यह युद्ध वंचक है, मल्लों से समर अनुचित, अकारण है।

सामन्तों के साथ ही सेनापति की मुद्रा गम्भीर हो उठी। उसने पूछा—मागध, तू यहाँ किस साहस से आया?

आहत ने कहा—श्रीमन् मैं मागध नहीं हूँ। मैं हूँ वज्जि-संघ का चराध्यक्ष—विद्युत्।

आश्चर्य से सब चकित रह गए। सेनापति ने देखा विद्युत् के शरीर से रक्त प्रवाहित हो रहा है।

वह मागधों का बन्दी था, बन्धन से निकल भागा था। सेनापति ने उसका अन्त निकट जान पूछा—'क्या संवाद है?' फिर शीघ्र वैद्य को बुला भेजा।

विद्युत् केवल इतना कह सका—मैंने राजगृह की मंत्रणा में सब सुना। सुना—"सुकंठ मालव मगधराज का संभेदक चर था।"

[प्रस्तुत कहानी की भूमि सामाजिक क्रान्ति का क्रीड़ा-क्षेत्र है—क्रान्तिकारी एक राजन्य परिव्राजक। उसके जीवन का आरम्भ सत्य की खोज से, मध्य उसकी प्राप्ति से, और अन्त उसके दान से होता है। सारा एक अटूट सवेग प्रवाह है। प्रेम और सहानुभूति परिव्राजक के संबल हैं, दया और अहिंसा उसके साधन, संप्राप्ति और विसर्जन उसके उद्देश्य।

३१–८–४० } { मध्याह्न ११–२–३०